शैलेश पंडित

देश जिन्दाबाद

स्मृति प्रकाशन
१२४, शहरारावाग
इलाहाबाद-३
□
नीलराज प्रेस
३३६/३८८ ए, शाहगंज
इलाहाबाद-३ द्वारा मुद्रित
□

□
आवरण : शिवगोविन्द पांडेय
□
प्रथम संस्करण १९८५

मूल्य : २५.०० रुपये

प्रख्यात भाषाविद्-समीक्षक
पूज्यवर डॉ० नरेश पंड्या
एवं स्मिता भाभी को,
जिनका असीम स्नेह मेरी
कविता के सौराष्ट्र-जीवन
की सबसे बड़ी उपलब्धि
है... ।

—शैलेश पंडित

इस उपन्यास के अलग-अलग अंशों
के प्रसारण एवं प्रकाशन के लिए
आकाशवाणी, आशीर्वाद, ऋतुचक्र,
सम्बोधन, नया प्रतीक, मधुमती,
नवभारत टाइम्स तथा सारिका
का आभार।

देश जिन्दाबाद
शैलेश पंडित

टीले के पास धूल उड़ रही है।

काका आ रहे होंगे।

काका एक बैल खरीदेंगे।

पिछले हफ्ते की बात है। एक रात जब किस्से-कहानियों से निबटकर लोग बिस्तर के हो गये, कुत्तों ने कान खडा करना बन्द कर दिया, पेड़ का एक भी पत्ता संवाद की स्थिति में नही था—ऐसे में काका के पूछने पर माँ ने मेरे सो जाने की सूचना उन्हें दे दी। और काका ने चुपके से कह दिया कि वे बैल खरीदेंगे। एकबारगी उनींदा माहौल जैसे जाग उठा। पिछवाड़े पीपल ने हरहराकर आँखें खोल दी। हवा एक चुगलखोर की तरह अँधेरे में आकर ठिठक गयी। माँ ने कहा, "भगवान का नाम लो। थोडे दिन और बचे हैं जिन्दगी के।"···और काका खाँसते हुए, इन संवादों के पगचिह्न धूमिल करने लगे।

पहले ऐसा नहीं होता था। काका लोहे के आदमी हैं। बिल्कुल कपाट जैसे। और कपाट की अपनी सीमा-यात्रा है। काका की भी थी। रात, आठ बजे ही बरामदे में हुक्का गुड़गुड़ाता। और दस मिनट बाद काका की नाक बजने लगती। सुबह, चार बजे वे खेत पर निकल जाते।

तब गाँव के परिन्दे भी काका की प्रभाती से आँख खोलते थे।

अब रात भर दरवाजे पर उदास बिल्लियाँ रोती हैं। पर जागी आँखों वाले काका को कुछ भी सुनायी नहीं देता। सुबह, दिन-चढ़े खाट पर एक मुर्दा पड़ा होता है, जिसे 'काका' कहना बहुत बेमानी होगा।

शाम अभी एक लौ-छुई रुई की तरह सिमट जायेगी। पिछली बार जब घर आया था, शामें ऐसे ही डूबती थीं। लेकिन तब पेड़ों का हौले सिर हिलाना, चिड़ियों का चहचहाना, घर लौटते पशुओं का रँभाना, और उनकी घंटियों का श्लोक गुनगुनाना—किसी रविशंकर के सितार-वादन को भी हल्का कर जाता था।

और इस शाम का संगीत ? उफ, भरतल्ला खजड़ी बजाते, फटे बाँस-जैसी आवाज निकालते, किसी अन्धे भिखारी को देखा होगा ! कुछ वैसा ही है। या उससे भी अधिक घिनौना। मिट्ठू छज्जे पर चढ़ा बैठा है। उड़ जा मिट्ठू ! काका को ले आ।

नहीं उड़ता कम्बख्त।

पर धूल उड़ रही है, टीले के पास।

काका आ रहे होंगे।

काका बैल खरीदेंगे।

यह बैल ही उनका जीना है। लेकिन यह जीना भी कभी-कभी आदमी के ऊपर से रेल की तरह गुजरता है। काका के ऊपर से एक रेल गुजर रही है। खत्म नहीं होती। पता नहीं, कब तक चलेगी ऐसे ! सामने घाघरा का पाट खड़ा चिढ़ा रहा है। और काका बुद्ध की तरह, चुपके क्षमा उलीच देते हैं।

वह रात बहुत काली थी। अमावस रही होगी। चोरों वाली रात। काका के कान शब्दों की गन्ध सूँघ रहे थे। ट्रांजिस्टर पर गवनई खत्म हो चुकी थी। खबरें प्रसारित हो रही थीं। पड़ोसी, सरकारी कर्ज की ताजा स्थितियाँ बता रहा था। और काका उनींदेपन का नाटक कर रहे थे। माँ की धानी-पीली डकार, उनकी भूख का कच्चा चिट्ठा खोलने लगी थी। उन्होंने चौके से बची हुई रोटियाँ खा ली होंगी। और बड़े लोटे भर

पानी पिया होगा। माँ ने आँचल की ओट से चिमनी बुझा दी। अँधेरे में काका पास सरक आये।

उस रात मैं पत्नी को मना रहा था। कहती थी, "मुझे भी साथ ले चलो। बुड्ढे पर चर्बी चढ़ गयी है। कम हो जायेगी।"

□ □

"शरत, तुम होते तो मजा आ जाता।"

काका हँसने के लिए माहौल तलाश रहे हैं। बताते है कि बाढ़ क्या थी, प्रलय थी-प्रलय ! पूरा गाँव समन्दर के बीच एक अजूबी बस्ती की तरह था। घर ढह गये। फसलें सड़ गयीं। पेड़ों पर लद गयी गृहस्थी। एक अग्नि-परीक्षा थी। कितने बह गये ! जो बचे, उनके बाप-दादो के बड़े पुण्य थे।

पर वा-रे-वाह, कैसी छवि थी !···काका चमत्कृत होते हैं।···पूड़ियाँ बाँटती थी, अफसरों की गोरे हाथों वाली बीवियाँ। बिलकुल मोम-ढली। हमें देखकर खुश होती थी। खिलखिलाते हुए फोटो खिचवाती थी, हमारे साथ।···काका थक जाते है बखान करते हुए। जैसे उस माहौल को शब्दों में बाँध न पा रहे हों। और काश, एक बार फिर बाढ़ आती तो दिखा देते कि ऐसे मे बड़े लोगों की कैसी छवि होती है !

और इसी छवि के आमन्त्रण में उनका बैल घाघरा मैया की भेंट चढ़ गया। जरूर उसके पुरखों ने पुण्य नही किया होगा। वर्ष में बहुत सारे त्यौहार आते है। छनती है पूड़ियाँ। काका उन्हे याद नहीं रखते। लेकिन याद रहेगी यह बाढ और पूड़ियाँ, वैसे ही—जैसे जालियावाला बाग के कत्लेआम और आजादी के उत्सव।···

एक फिल्म गुजरती है आँखों से।

दिसम्बर की सर्दियाँ होती थी। सुबह हम कथरी में लिपटे पहाड़ा रट रहे होते थे। सूरज उगने तक माँ, मजूरी पर दो सेर आटा पीसती। काका किसी का गन्ना छील रहे होते। छीलते। बोझ बनाते। सिर पर लादकर कोल्हू तक पहुँचाते। कभी दो, तीन। और कभी दिन भर। फिर

कुहनियों तक खरोंचे लिये घर लौटते। हँसते-ठठाते। जैसे कुहनियों में अगराग मलकर आये हो। और इसके बदले मिलता था दो-तीन लोटे रस। कभी सैम्पल मुलाहिज़ा गुड़। शामें कहकहों में बीततीं। और सुबहें बाद-शाह सलामत होने की उम्मीदों में काका को लगातार उन्ही पगडंडियों की ओर ले जाती।

एक दिन काका की उम्मीदें साकार हुईं। पत्थर पर खिल गया गुलमुहर। भैया सर्विस में आ गये। काफी बड़ी सर्विस थी। मकान की बूढ़ी दीवारों ने अपने पोपले होंठों से हँसी विखेर दी। तालियों पर बधा-वर बजायी। वैसे ही, जैसे बच्चे के जन्म पर बजती है। दरवाज़े पर हुक्का भरा जाने लगा। गयी रात तक शरीफों की बैठकें जमतीं। गाँव की छाती पर चढ़कर एक अलिखित सूक्ति बोलती रहती—मेहनत का फल मीठा होता है।

लेकिन अपने बुझने की दशा में हर दीपक बहुत तेज लौ देता है। काका की लौ एकाएक बहुत तेज हो गयी। भैया की शादी हुई। और बुझ गया यह सब। भैया ने काका को बेईमान घोषित कर दिया। और भाभी के साथ अल्मोड़े चले गये। जहाँ से उनके आकाश-कुसुम खत कभी नहीं आते।

उस सुबह, पहली और अन्तिम बार काका रोये थे। औरत की तरह फफककर। फिर बुत हो गये। बुखार से जलने लगी देह। माँ ने देवी-देवता मनाये। रात, बड़ी मुश्किल से सो पाये थे, कि एकाएक नींद में चौंक उठे। अँधेरे में उनके पाँव पर एक वजन रखा हुआ था। जिससे बहकर कोई तरल चीज पाँव को भिगो रही थी। माँ ने जल्दी से लालटेन जलायी। देखा, बैल ने खूँटे से रस्सी तोड़ ली थी। और काका के पाय-ताने बैठा, पाँव पर सिर रखकर भामाशाह-मुद्रा में पड़ा था। काका का मन भर आया। लगा कि उससे लिपटकर रो पड़ेंगे। चुपचाप उठे। उसके आँसू पोछे। माथे से पीठ तक हाथ फेरा।

"चुप हो जा। मैं ठीक हूँ।" काका ने कभी उदास न होने की कसम

खायी। फिर उसे खूंटे से बांधकर बिस्तर पर लौट आये। सारी रात उसे अपने पाँवों पर पड़ा हुआ महसूसते रहे।

तब से लगातार उन्हें ऐसा लगता रहा कि भैया कहीं नहीं गये। उन्होंने काका को बेईमान भी नही कहा। उनकी उदासी पर और कोई इतना नही रो सकता। यह बैल नही, भैया ही हैं।

काका रोज, सुबह बिस्तर से उठकर उसे दुलारते। तालाब में मलकर नहलाते। शाम, खेत से लौटने पर मुट्ठी भर चारा जरूर लाते। जैसे ऑफिस से लौटते हुए पापा को गुड्डू के लिए टॉफी लाना जरूरी होता है। कड़ी सर्दियों में भी काका अपना लिहाफ उसे ओढ़ा आते। हिदायत देते—गन्दा मत करना!···और फिर कथरी के सहारे सारी रात सूरज का इन्तजार करते।···

काका को इतना भी वक्त नही मिला कि पूछते—घाघरा मैया, यह तूने क्या किया? रात, रामचन्द्र और सीता की चर्चा के साथ सोये थे लोग। सुबह चढते हुए पानी की छुवन से आँखे खुली। तब तक सब कुछ हो चुका था। पूरा गाँव पानी पर तैरने लगा।···

अब फुर्सत के क्षणों में, उसे भूलने के लिए काका के पास बहुत बड़ी उपलब्धि है, कि वा-रे-वाह, कैसी छवि थी!

□ □

"सुनो, मुझे भी ले चलोगे साथ?" पत्नी ने बाहों में आते ही पूछा।
यह दूसरी बार था।

पन्द्रह दिन की छुट्टी पर घर आया हूँ। महानगर में सात-आठ सौ रुपये की सर्विस कुछ भी तो नही होती। वसन्त आये या जाये, सावन कितने भी राग गाये, पर वहाँ हम जैसों का एक ही राग होता है—जानलेवा शोर का राग। कभी भी खत्म न होने वाला। और उस शोर से छनकर मौसम हमारे पास तक नही आता। जहाँ जाता है, वहाँ बारहों महीने बसन्त होता है। सावन भी। वे पलाश और गुलमुहर के मुहताज नही होते। ऐसे में बहुत तोड़ती हैं, सड़क पर चलती हुई

लड़कियाँ। रात करवटों में गुजरती है। और अपनी देहातिन बीवी के साथ फकीर हो जाने का मन होता है।

···इस बार वह मेरी पहली रात थी। मैं पत्नी की देह के इंच-इंच पर अपने दुष्यन्त होने का एहसास जड़ रहा था। याद नहीं कि उसकी देह में, कभी उतना चुम्बक मुझे मिला हो। उसने मेरी आग को पलड़े पर रखते हुए कहा, "तुमने वायदा किया था···।"

"क्या ?"

"कि इस बार मेरे लिए हार ले आओगे।"

एकाएक मेरी आँखों के आगे एक चक्र घूमने लगा। जिसके हर हिस्से में पत्नी की गदरायी हुई देह थी। फाँक-फाँक बँटती हुई। याद नहीं रहा, कि इसके बाहर एक बाढ़ग्रस्त माँ-पिता की व्यवस्था है। उनकी हड्डियों से रक्त लेकर पत्नी ने स्वयं को इस तरह निखारा होगा। और उन हड्डियों को राख होने तक, रोटी और प्यार की जरूरत है।

मैंने बिस्तर से उछलकर चाभी ढूँढी। और अटैची से निकालकर दो हजार रुपये उसकी हथेली पर रख दिये। अब मेरे पास, महानगर की याद के सिवा कुछ भी नहीं था।

सुबह, शर्बत पर काका ने कहा, "शरत, तुम तो जानते हो कि बाढ़ ने कुछ नहीं छोड़ा। मकान की मरम्मत करानी है। साल भर का राशन लेना है। और एक बैल भी। कितने रुपये हैं तुम्हारे पास ?"

"मेरे पास ?"···लगा कि काका का संरक्षण मुझ पर उस सर्कस-मैन की तरह है, जो सीमा से बाहर होते ही शेर को कोड़े लगाता है—सटाक्। काका मुझ पर कोड़े लगा रहे हैं। पर मैं इतना पालतू नहीं हूँ। मैंने उनका वार, उन पर लौटाते हुए कहा, "काका, मैं पिछले चार महीनों से बीमार था। दूसरों से उधार रुपये लिये हैं।···और बैल ? बैल क्या करोगे ? भूँसे की भी किल्लत है। खेत मजदूरों को आधे पर दे दो।"

काका चौंक गये। लेकिन खामोश रह जाने के अलावा कुछ नहीं

कहा। बस, चेहरे से आँखें हटा ली। तब से मेरी ओर नही देखते।

उस शाम, काका बार-बार अपनी हथेलियाँ निहारते रहे। जैसे सारी रेखायें अचानक बोलने लगी हों। और चीखकर कह दिया हो, कि बहुत खुंख है ये हथेलियाँ।

और एक रात उनके मन्सूबे सरकार की दरियादिली पर टिक गये। उन्होंने माँ से कह दिया कि वे कर्ज लेकर बैल खरीदेगे। तब से सुबह के गये, शाम को घर लौटते है। शायद काट रहे होंगे बैंक के चक्कर।···

पत्नी का यह दूसरा पलड़ा था। बेहद डरावना। इस बार और झुल जाने पर माँ-काका की हड्डियों को क्षण मे राख कर देने वाला।

उसने टोका, "सुनो, मैंने कुछ कहा था ?"

"हाँ, कहा था।"

"क्या ?"

"कि इस बार तुम भी साथ चलोगी।"

"तुमने क्या सोचा ?"

"अभी सब्र करो, कुछ दिन।"

"क्या ?" वह तमतमा गयी, "इन बुड्ढे-बुढ़िया के लिए सब्र करूँ ?"

"चुप हो जाओ। तुम्हें यह शोभा नही देता।" मैंने गिड़गिड़ाकर कहा।

पत्नी ने मेरी ओर हिंसक दृष्टि से देखा। कोशिशों के बावजूद वह मेरी बाहों से छिटककर अलग हो गयी। बच्चे की तरह खाट से उधेड़-कर चादर, गद्दा, तकिया जमीन पर पटकने लगी। चीख उठी, "आग लगे तुम्हारी कमाई मे।"···और यह सुनते ही मैंने एक जोरदार चाँटा उसके गाल पर जड दिया।

वह सन्न रह गयी। जमीन पर लेटकर गुबकने लगी। सारी रात यह सब होता रहा।

सुबह पत्नी से झिड़ककर रुपये ले लिए हैं मैंने। काका सूर्योदय से

पहले जा चुके हैं। आज लौटने पर रुपये उन्हें दे दूंगा। उनकी उदासी मे पाँव पर सिर रखकर रोने वाला कोई तो इस घर मे होना ही चाहिए।

…इस बार यहाँ, यह मेरी आखिरी शाम है। माहौल का संगीत वही अन्धे भिखारी के गायन जैसा है। धूल उड़ रही है, टीले के पास। मुझे उसका उड़ना एक गतिशील यात्रा का काव्य-पाठ लगता है।

अभी और उड़ेगी।

काका आयेंगे।

काका जरूर बैल खरीदेंगे।

अंधेरे के कैनवास पर एक लकीर उभरती है। मीलों लम्बी। धूमिल और उसके इंच भर हिस्से पर कोई रंग पुत रहा है, शायद।

मेरी एक भी कोशिश कारगर नहीं हुई।

और नोटों की एक गड्डी घर में आ गयी। मकान के बूढ़े चेहरे पर यह ऋणबोध काले धब्बे की तरह उभर गया। और काका एक दीवाली की योजना बना रहे थे, कि वे खेतों से मोती उगाकर बैंक की हथेली पर इस तरह रख देंगे कि पूरा देहात वाह-वाह कह उठेगा।

उस शाम, गाँव की चौहद्दी तक चीखता रहा मेरा घर। और बड़े-बूढ़े घरों में लेटे हुए भजन गाते रहे। मैंने उस चीख को विस्तार देते हुए कहा, "काका तुमने अच्छा नहीं किया।"

काका उन क्षणों में दीवार पर लगी हुई, मेरी दस साल पुरानी तस्वीर घूरते रहे। और एक हल्की हँसी फेंककर, मेरे चेहरे को लहूलुहान कर दिया। एकाएक मुझे अपना दस वर्ष पुराना चेहरा याद आया। लगा कि वह मुझसे अलग, कोई दूसरा आदमी था। अगर वह इस वक्त मिल पाये, तो उसे टुकड़े-टुकड़े काटकर, चील-कौवों के हवाले कर दूं।

फिर पत्नी की याद आयी। शायद इस तनाव से वह स्वयं को अपराधिनी महसूस कर रही हो! मैं घर के भीतर गया। पत्नी विजय-गर्व से तनी थी। सहसा मैं संयमहीन हो उठा। नहीं, इस आवेश में

भी अनिष्ट हो सकता है।···मैं खेतों की ओर निकल गया। वहाँ पेड़-पौधों, खंडहरो और टीलों पर अनगिन भूत कालीन कथाएँ खुदी थी। उनमे मेरा दस वर्ष पुराना अध्याय, एक तटस्थ न्यायविद् की तरह कह रहा था कि मैं दोषी नही हूँ।

☐

वे चर्चाओं भरे दिन थे। जंगलों में खिलते थे गुलाब। और उनकी गन्ध, लोग काका के दो होनहार बच्चो मे पा लेते। बच्चे, आखिर बच्चे थे। दस पैसो की होड़ पर खुश होते। या पंख खुलते परिन्दो की तरह लड़ते-झगड़ते। रेत पर पौधे उगाते। कागजों के घरौंदे बनाते।

बच्चे बडे हुए। वक्त के साथ बड़ा होता गया उनका संसार। यश के बगूले पहले से बहुत तेज होते गये। काका की बाँछें खिलती गयी। उनके भीतर एक सफल पिता होने का दम्भ बहुत तेजी से सिर उठाता गया।

पर इस यश की कीमत पूछे कोई युधिष्ठिर समझे जाने वाले दादा जी से। अचानक दादा जी चालीस की उम्र में तब्दील हो जायेंगे। तब वह देह, इस अस्सी वर्षीय जिस्म से अधिक भुसभुसी थी। जायदाद के नाम पर एक लाठी और पत्रा लेकर आये थे वे, इस गाँव में। और उनके पीछे एक शरणार्थी परिवार। जिसे गोरे लोगों ने बगावत के जुर्म में बिहार से उजाड़ फेंका था। और इस गाँव के बाबुओं ने उसे महज इसलिए बसा लिया, कि उनके शुभ-अशुभ के लिए एक पुरोहित हो जायेगा।···

"सुनो पंडित जी, कल मेरे पिता की बरषी है, सुबह आ जाना!"

"अच्छा बाबू!"···

"अबे ओ लालची टुच्चे, मन्त्र गलत पढ़ना था तो पहले बता देते!"

"गलती हो गयी मालिक!"···

"तुम्हारे बेटे ने मेरे बेटे को मारा। नालायक! हमारी भीख पर पलने वाला। कल से खेत में हल मत चलाना!"

"अच्छा सरकार!"···

"क्या कहा ?" शशि बाबू के भीतर एक कटार बनने लगी, "बाप न दादे, पूत हरामजादे । अरे पानी हमेशा अपनी ढाल पर ही बहता है।"

"कभी बहा होगा । अब नही बहेगा ।"

"कैसे नही बहेगा ? बहाया जायेगा ।" शशि बाबू का जवाब था ।

उस दिन शशि बाबू की बैठक मे काका के लिए एक कुर्सी डाल दी गयी । चेहरों पर स्वागतम् पुत गये । अभिवादन में झुकते हुए माथ, काका को ब्रह्म घोषित करने लगे । छनने लगी ठंडाई । राजनीति से लेकर पुराण और इतिहास तक के पन्ने पलटे जाने लगे और उनमें काका का निष्कर्ष सबसे ऊपर होता था ।

एक दिन काका ने घर मे कहा, "शरत्, तुम्हारे लिए शशि बाबू ने कोई नौकरी ढूंढी है । वैसे पोस्ट तो मुनीम की है । लेकिन आगे बढ़ने का चास है। मिल लो उनसे ।"

मै अवाक् था, "क्या कह रहे है, आप ? मैं मुनीम बन जाऊँ ?"

"तो इसमे बुरा क्या है ?"

"क्यो, बुरा नही है ? क्या यही बनने के लिए मैंने एम० ए० किया है ?"

"तुमने जो भी किया हो । मगर यह मेरा आदेश है ।"

मै इस साजिश से वाकिफ हो गया । और उससे काका को परिचित कराते हुए बोला, "तो मुझे शशि बाबू का परोपकार नही चाहिए ।"

"पर मुझे चाहिए ।" काका ज्वालामुखी की तरह फट पड़े, "शशि बाबू के पुरखो ने हमें इस गांव मे बसाया । और आज तुम्हारे पख उग आये हैं !"

–उस शाम शशि बाबू ने एक और ब्रह्म-वाक्य गढ़ा कि यही होता है। अधिक पढ़ने से दिमाग खराब हो जाता है । और इसे उनकी बैठक के सभी सदस्यो ने स्वीकार किया । फिर सिलसिलेवार चलने लगी कथाएँ कि देहात के किन-किन लड़कों ने अधिक पढ़ लेने पर पिता को नौकर से भी बदतर दर्जा दिया !···

कौवो ने फिर मेरी मुड़ेरों पर साम्राज्य पा लिया। दरवाजे पर शशि बाबू की रची हुई सुबहें आती। काका का जयघोष करती। लौट जाती। मकान की दीवारों पर पुतते रहे कोलतार। और काका का चश्मा उसे नीले रंग मे नहाता हुआ साबित कर जाता। सहसा मैंने अपने हाथों मे लाठी और पत्रा महसूस किया। लगा कि दादा जी की तरह इस गाँव में आया हूँ। पर मैं अपनी मूँछें साबूत रखूँगा।

अगले दिन मैं शहर के लिए तैयार था। रुपये माँगने पर काका बोले, "बात यह है बेटे कि अब तुम बडे हो गये हो। अपना इन्तजाम खुद कर लो।"

"लेकिन काका, तुमने तो कहा था···"

"कि तुम्हें गवर्नर बनाऊँगा ?" उन्होंने मेरी बात काट दी, "बनो, जरूर बनो। मगर अपने बूते पर।"

काका ने मुझे घर-बाहर कर दिया। मै विक्षिप्त हो उठा, "गुलाम कही के। आज से मै तुम्हारा बेटा नही। अब शशि बाबू को अपनी औलाद कहना!"

यह मेरे युद्ध का मंगलाचरण था।

मै दिशाहीनता के अँधेरे में खो गया। हर रात अपने ऊपर एक छत ढूँढने के लिए। किसी गुमनाम खोज मे अन्धे होने के लिए। हफ्ते भर भूखे रहकर, एक अफसर के भाषणो का नाश्ता करने के लिए। ऐसे कितने-कितने अँधेरे। एक-से-एक दैत्याकार। शहर उत्सव की चमक में डूबता रहता। और मेरे जिस्म की अलगनी पर एक पेट, मृत जानवर की उतारी गयी खाल-सा लटका होता था। हर उत्सव मे तटस्थ।

सुना था, उस दिन काका ने मेरी कमाई को गौमास समझने की कसम खायी थी। उस साल मैंने अपनी एक तस्वीर खिचवाई थी—जो घर मे, बैठक की दीवार से आज भी मेरा पूरा अहम् बयान करती है।

इस घटना को दस साल हो गये।

☐ ☐

यह भी एक सूरज था। आकाश की छाती पर एक कटा हुआ सिर,

जिसमें मेरे अपनेपन की पहचान थी। शायद यह सिर मेरी पत्नी का हो। या मेरा। जिसे पिता की लायक सन्तान होने की कोशिश में, पिछली रात मैंने काट लिया था। काश, काका भी ऐसा महसूस करते।

माँ शाम की चाय सिरहाने रख गयी। बाकी कुछ भी नहीं कहा। माहौल के ऊपर मैं एक धुन्ध की तरह था। माँ ने आँख चुरा ली। चुपचाप तालाब की ओर चला गया, कि स्वयं को शायद कुछ बदल सकूँ। किनारे पर छोकरे बन्सी डाले बैठे थे। घन्टों। मछलियाँ एक क्षण आहट लेती। फिर पानी में बहुत दूर निकल जाती। छोकरे चिल्लाते—उधर काँटा डालो, उधर।···फिर उस ओर दौड़कर खिलखिला उठते।

एकाएक मन हुआ, कि मेरी सारी उपलब्धियाँ उन मछलियों की तरह बहुत गहरे चली जाये। और मैं बन्सी डाले यूँ ही खिलखिला पड़ूँ। खाली, एकदम खाली। मेरे काँटे पर किसी शशि बाबू की निगाह तक न हो। पर वह उम्र जिस पर मैं खड़ा था, ऐसे चौरस्तों की ओर ले जाती थी, जिन पर कई-कई शशि बाबू खड़े थे। मेरी हार पर भी घिन छोड़ते हुए। मैं क्या करूँ ?

अँधेरे ने मेरी पीठ थपथपाई। और मैं लौट पड़ा। घर पहुँचा तो काका आ चुके थे। अलाव पर ठंड काटते। पिछले सन्दर्भ चबाते। स्वयं से बतियाते। एक क्षण को उधर रुका। पर काका ने मेरी ओर नहीं देखा। घर के भीतर गया तो वही बर्फीला माहौल। पत्नी अलग चुप, माँ अलग। लौटकर मैंने काका की चुप्पी से लड़ना उचित समझा। अनजाने उनकी नजरें उठी तो मैंने कहा, "काका, तुम्हें बैल चाहिए न। ये दो हजार रुपये हैं। खरीद लेना।"

"लेकिन तुम्हारे पास तो रुपये नहीं थे ? कहाँ से आ गये ?" काका ने मुझे तार-तार तोड़ते हुए पूछा।

"बात यह है कि पत्नी हार के लिए जिद कर रही थी।" मैं सकुचा गया।

"तो खरीद दो न हार !"

काका ने रुपये मेरे ऊपर फेंक दिये। और अलाव से उठकर बाहर निकल गये।...

फिर वही, शशि बाबू की बैठक।

"शशि बाबू, कुछ सुना आपने ?" काका जैसे [illegible] का अजूबा सुना रहे हो।

"क्या ?"

"शरत रुपये दे रहा था।"

"तो पाण्डेय जी आप उससे रुपये लेंगे ?'

"क्या करें, न लें ?"

शशि बाबू ने कहा, "पाण्डेय जी, ऐसे [illegible] अधिक भला होता है।...और बैंक कोई हौवा नहीं है, कि कर्ज देते ही सिर पर सवार हो जाये। आपके हाथ-पाँव सही-सलामत है। साल भर में खेती से चार गुना पैदा कर सकते हैं। फिर क्यों किसी के आगे हाथ फैला रहे हैं ? अरे, वही शरतवा है न, जिसने आपको मेरा गुलाम कहकर धिक्कारा था ! मैने तो उसके फायदे के लिए सलाह दी थी।"

दूसरे दिन शशि बाबू कस्बे गये। काका भी। और शाम तक घर में नोटों की गड्डी आ गयी।

माहौल पर मेरी पराजय इंच-इंच टँक गयी। मैने मौसम के फूल देखना चाहा। पर दूर तक एक उदास बाँझपन था। मुझे लगा जैसे आज ही कर्जखोरी के जुर्म में मेरा घर नीलाम हो जायेगा। आज नही तो कल। शायद अब से भी स्थिति सम्हल जाये और काका रुपये लौटा दे, इस खयाल से कह उठा—काका तुमने अच्छा नही किया।

लेकिन अब काका खाली हाथ नही थे। जिस्म में गर्मी थी। उनके भीतर एक कर्मठ किसान जाग उठा था। जो देहात के बूढ़ों के लिए एक आदर्श उपस्थित करने वाला था, कि सन्तान के ऊपर कभी आश्रित मत रहो। अपनी भुजाएँ पहाड़ तोड़ सकती हैं। फावड़ा उठाकर देखो।

काका फावड़ा उठाने का निर्णय कर चुके थे। तुरन्त बोल उठे, "बस-बस, भाषण अपनी बीवी को सुनाना।"

सहसा मैं तिनके-तिनके हो उठा। एक हाहाकार मेरे भीतर अपनी चरम सीमा तक उभरा। मन हुआ कि इस समूची बस्ती को राख के ढेर मे बदल दूं। एकबारगी मेरा जिस्म भुतैली ठंड से जम जाये। और मैं बस्ती को आग लगाकर तापूं। या इस वक्त नदी पर निकल जाऊँ। लहरों के उठे हुए हाथ अनगिन कामिनियों के आमन्त्रण समझूं। पर्वतों में ईश्वर तलाशूं। रेत पर दौड़ूं, रोऊँ-चिल्लाऊँ। शराबी हो जाऊँ।

पर यह सब, कुछ नहीं हो सका। मेरे भीतर वही हाहाकार निरन्तर उठता रहा। रात भर नीद में अजीब-से सपने। एक सिर कटी लाश को पिता कहकर पुकारना। हिजड़ों के उत्सव में नाचना। हरेक को झुक-झुककर सलाम करना और अन्त मे एक हिनहिनाता हुआ सत्य बोलना—बाबूजी, यह सब पापी पेट के वास्ते।···

हे ईश्वर, अन्ततः पता नही क्या होगा !

□ □

फिर वही महानगर। शहर का जंगल। रोशनी की वादियाँ।

दफ्तर की फाइलों मे उभरता रहा, मेरा पारिवारिक चेहरा। हड्डियों के टुकड़ों पर गुर्राता। बदबू मे नहाता हुआ।···चलते समय मैंने माँ-पिता के पैर छुए थे। पैर मुर्दों की तरह निश्चल थे। भीतर, पत्नी को कुछ समझाना चाहा। किन्तु लगा कि वह औरत नही एक पागल कुतिया है, जो ऐसे सवादों के उत्तर में काट खायेगी।

यह सब सोचते ही मुझमें एक नरभक्षी ताकत उबल पडी। आवेश के शिखर पर मैंने हाथ का पेपरवेट मेज पर पटक दिया। 'झन्न' की आवाज दूर तक गूंज गयी। शीशे की किरचें फर्श पर बिखर गयी। सबके साथ साहब की आँखें मुझ पर टिक गई। एक खूंखार सवाल लिये हुए। मेरा अनुमान था कि आँखे अब अंगारों मे बदल जायेंगी।

वही हुआ।

साहब ने पूछा, "क्या बात है मिस्टर शरत ?"

"कुछ नहीं सर।" मैं वीरान था।

"तो यह ऑफिस है, शराब-घर नहीं।"

"आई एम सॉरी, सर।"

मैं ज़ुबान की अपेक्षा चेहरे से अधिक शर्मिन्दा था।

...उस शाम डेरे पर लौटते हुए मेरे भीतर लगातार आंधी चलती रही। काका से अलग, अब मैं भी एक अभियान पर था।

गाँव में फसलों के फागुन शुरू हो गये।

पिछले दिनों जब असाढ़ बरसा, किसान हल लेकर दौड़े। मेड़ बाँधकर पानी रोका। खेत को धरती की जड़ों तक चीरकर मिट्टी उलट दी। और बादलों में धूप खिलने तक, खेत मे पौधे रोप दिये। फिर शुरू हुई खाद की प्रतियोगिता। नसों का टूटना। पौधों को बच्चों की तरह सहलाना। खुली धूप में दुलारना। उनकी तुतलाहट सुनना। एक मौसम ईजाद कर झूम जाना।

ऐसे मे उनकी आंखो में एक फीता होता था। जिससे वे हर सुबह फसलों की लम्बाई, बीमारी, सुख-दुख माप लेते थे।

और इन बातों मे काका का जवाब नही। हवाओं में उठते रहे मौसम के बवण्डर। धूप, बारिश, सर्दियाँ—अपनी गश्ती में थक जाती। मगर काका उनकी मौजूदगी को हाथ की खैनी मे मसल देते। उनकी जवानी जाग उठी थी। और उसे व्यक्त करने के लिए वे खेत की मेड़ से अकसर कोई गीत गा उठते।

काका जवान हो उठे थे।

अन्ततः पौधे भी जवान हो गये। उनके माथों पर पगड़ी-सी खिल

उठी बालियां। पौधे सिर हिलाकर सिवानों में थिरकने लगे। मीलों दूर तक वही थिरकन। और काका की फसल, जैसे उस भीड़ के नृत्य को 'लीड' कर रही हो। आदिवासियों के बीच लम्बे सरदार की तरह।

देहात में फिर शुरू हो गयी काका की चर्चायें। लोग देखने आये। जो नहीं आ सके, उन्हें अपनी व्यस्तता या काहिली का रंज था। उन्होंने जबानी सुना और बोल पड़े, "बड़ा कूवत वाला आदमी है। तभी तो बेटों को दुत्कारकर भगा दिया। उनकी एक न चलने दी।"

"अरे भाई, अब तो बुढ़ापे का आलम है। जवानी में इसने दिन को दिन समझा, न रात को रात। और इस उम्र में इसने जो कर दिखाया, सचमुच अजूबा है। ऐसी फसल तो हमने अपनी जिन्दगी में नहीं देखी।"

शशि बाबू इन चर्चाओं को बहुत सधे अन्दाज में सुनते। दूर तक शब्दों पर कान देते। पर उनकी बैठक में काका का स्थान, पहले की तरह जहांपनाह का था।

शशि बाबू कहते, "पाण्डेय जी, तुलसीदास ने लिखा है···।"

"क्या लिखा है?"

"कि धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी—
आपद काल परखिये चारी।"

"सो तो परख लिया।"

शशि बाबू अपने रहस्य का पर्दाफाश करते, "हालांकि गोसाईं जी ने सम्बन्धियों में केवल मित्र और नारी की बात की है। मगर नारी कहो, मित्र कहो, भाई-बन्धु कहो, या सारी दुनिया—सभी विपत्ति के समय परखे जाते हैं।"

"सो तो है।"

"तो यह समझो कि ये लड़के जन्म-जन्मान्तर तक तुम्हारे नहीं हो सकते!"

उस रात काका ने लौटकर मां से बताया कि ये लड़के जन्म-जन्मान्तर तक उनके नहीं हो सकते। लेकिन अब तो दिन कट गये हैं। सब दौड़े

हुए आयेंगे। मगर उन्होंने सोच लिया है कि उनके लड़के मर चुके हैं। या वे ही अपने लड़कों के लिए इस दुनिया में नहीं रहे।

फिलहाल देहात में काका के श्रम का बहुत शोर हुआ। एक शाम किसी पढवैये ने बताया कि बी० डी० ओ० आयेंगे। फसल देखकर काका को पुरस्कार देंगे। रेडियो वाले उनकी बातचीत प्रसारित करेंगे। काका ने शशि बाबू को यह खबर दी तो वे 'धक' से रह गये। सम्हलकर बोले, "अफवाह हो सकती है। कल ब्लाक जाकर पता करेंगे।"

और अगले दिन ब्लाक से लौटने पर उन्होंने कहा, "वही बात निकली। अफवाह, बिल्कुल अफवाह। ये कल के छोकरे जो न उड़ा दें! पुरस्कार कहाँ से देंगे? ब्लाक का बजट तो वैसे ही घाटे में चल रहा है।"

कुछ देर तक शशि बाबू काका के चेहरे पर अपने कथन की प्रतिक्रिया पढ़ते रहे। और उछलकर बोले, "पर बी० डी० ओ० आपकी बहुत तारीफ कर रहे थे। कह रहे थे—आप देश के नवरत्नों में से एक हो।"

काका को शशि बाबू पर पूरा यकीन था। बावजूद इसके, उन्होंने लौटकर पढवैये से फिर पूछा। उसने कहा, "पक्की खबर है। ग्राम-सेवक बता रहा था।"

हालांकि दुविधा थी, फिर भी काका प्रतीक्षित रहे। मगर बी० डी० ओ० नहीं आये। पुरस्कार नहीं मिला। हाँ, आकाशवाणी से दो लोग आकर काका का खेती-सम्बन्धी भाषण टेप कर ले गये। खुदा का शुक्र था कि वहाँ तक शशि बाबू की कोई पहुँच नहीं थी। वरना वे भी न आते। और यह बात भी बिल्कुल अफवाह साबित हो जाती।

इस सच से अभिभूत काका उस दिन से फूले-फूले फिरने लगे। गाँव के ईंट-रोड़ों तक को ठोकर मारकर बताते, कि वे सिर्फ अपने बच्चों के लिए माटी के मोल हैं। रेडियो वाले तक उनके पीछे दौड़ते हैं। जबकि रेडियो पर बड़े-बड़े मिनिस्टर बोलते हैं।

□ □

अन्ततः खेतों में वालियाँ पककर लटक गयीं।

कटनी शुरू हो गयी। हँसिये पर मजूरिनें गातीं। वातावरण में

आवाजों की एक वंशी फूट पड़ती । और शाम तक खेत वीरान हो जाते । वीरानियाँ हर शाम पहले से कई गुना और बढ़ जाती । फसलों की भाषा मरती । और उदासी के जंगल चारों ओर हरे हो जाते ।

काका खेत के एक किनारे खडे थे । अपनी फसल और उस जंगल के बीच । सोच रहे थे कि अब उनकी फसल का वहाँ अकेले होना ठीक नहीं। तभी उधर से शशि बाबू गुजरे ।

"किधर खोये हो गुरुदेव ?"

"यही फसल कटवाने की सोच रहा हूँ।"

"कब ?"

"कल ही ।"

"मगर क्यों ?" शशि बाबू ने संयत होते हुए कहा, "कल इतने मजदूर मिलेंगे कहाँ ? दस एकड़ का चक है । आप मेरी कटनी हो जाने दें । फिर सारे मजदूर आपको दे दूँगा ।...और आपका धान तो अभी ठीक से पका भी नहीं है ।"

"सो तो है । मगर अब इन्तजार करना ठीक नही । जमाना खराब है । चोर-चाई का कोई ठिकाना नही ?"

"अरे छोड़िये । चार दिन की बात है । और आप तो रात को खेत पर ही सोते है ।"...

काका मान गये ।

उस रात घर से खेत के लिए निकले तो शशि बाबू ने टोका, "चाय तो पीते जाओ ।"

काका बैठ गये । चाय की चुस्की के साथ शुरू हो गयी खबरें—देश-विदेश की ।

चाय के कई दौर चले । बहसों में डूबते-उतराते रहे, लोग । रात काफी उतर आयी । काका उठने लगे तो शशि बाबू बोले, "क्यों जान दे रहे हो ? अरे, मेरे रहते कोई आपका बाल भी बाँका कर सकता है ? फूँककर रख दूँगा उसको, जड़ से ।"

"सो तो है। लेकिन अपने से होशियार रहना चाहिए।"

"खैर, होशियार तो आपको रहना ही पड़ेगा।···और पाण्डेय जी, बहुत दिन हो गये, आप से किस्सा सुने हुए। वह, रानी सारंगा का डोला-प्रसग, आज हो जाय।"

"हाँ, हो जाय पंडित जी, हो जाय।" सब एक साथ बोल पड़े।

काका थोड़े अनमने हुए। फिर बिस्तर फेंककर लेट गये। फुर्सत से। शुरू हो गया प्रसग।

"सारंगा की शादी हो गयी। उसने सदावृज को शिव-मन्दिर में मिलने का वचन दिया। डोला जब मन्दिर के पास पहुँचा तो सारंगा ने अर्ज किया—

"सुनवे, तू सुनवे
भइया, अगला कहरवा रे!
तनी देवे डोला मोर छुपाई हो
शिव पूजन हम जाब···"

"वाह पंडित जी, क्या कंठ पाया है!"

"सचमुच, शहनाई झूठी पड़ जाती है।"

"रेशम जितना पुराना पड़ता जाये—धुलते रहो, चमक बढ़ती जायेगी। वैसे ही पाण्डेय जी का कंठ है। उम्र के साथ और भी निखर उठा है।"

"और यह सारंगा का सदावृज से प्रेम था क्या पंडित जी?"

"हाँ भाई, प्रेम था तभी तो ऐसा हुआ!"

"अरे, प्रेमवें तो आदमी को डोम बनाता है। सदावृज भी आखिर जोगी हो गये थे।"

···किस्सा भोर तक चलता रहा। और जब आँख लगी तो लोग मुर्दा होकर पड़ गये।

उस दिन, धूप निकलने नहीं पायी। धुँधलके में ही गाँव चर्चा-फुस-फुसाहटों से भर गया, कि रात पाण्डेय जी की फसल चोर काट ले गये। पूरा चक साफ है। खेत पर भीड़ लग गयी। जो ही सुनता, उधर

दौड़ता। पर पाण्डेय जी थे कि शशि बाबू की बैठक में सो रहे थे।

आखिर लोग उधर को दौड़े।

काका को जगाया, "तुम यहाँ घोड़ा बेचकर पडे हो ! उधर अनर्थ हो गया ?"

काका सुनकर अवाक् रह गये। खेत की ओर लपके तो पछाड खाकर गिर पड़े। लोग उन्हे उठाकर घर ले आये। काका बेहोशी में बडबड़ाते रहे।

गाँव में अटकलें लगती रही, कि यह किसका करिश्मा हो सकता है ? निश्चय, अनिश्चय और सन्देह बनते रहे।...और शशि बाबू यह कहते घूम रहे थे, कि राम-राम, उन्हें क्या पता था कि आज की रात कहर बरसेगा ? नही तो किस्से की क्या बात ? आज नही, कल सुनते। पर होनी को कौन टाले ? वह तो होकर रहेगी। किसी बहाने। हाय-हाय, कैसा जमाना आ गया ! गरीबो का गुजर नही।...

पूरा घर सन्नाटे से घिर गया। गाँव के अड्डों पर लोग बहस करते। बर्फ का एक अम्बार उस घर को 'फ्रीज' किये हुए था। काका दूसरे दिन कुछ सहज हुए। पर चेहरे पर वही ठड। उठे न दातुन की। खाने-पीने का सवाल ही नही। आँखें एक बार सामने छत पर थमी, सो थमी रह गयी। माँ ने बहुत समझाया। हिम्मत बँधायी। मगर उन आँखों की जड़ता मे कोई फर्क नही आया।

माँ, शशि बाबू को बुला ले आयी। उन्होने आते ही हाथ पकड़कर काका को बिस्तर से उठा दिया। और अपने घर ले गये। बोले, "रोने-धोने की जरूरत नही। चैन से खाओ-पियो। भगवान का नाम लो। मेरे हाथ इतने छोटे नही है। आखिर पता तो चलेगा ही। समझा न दिया तो राजपूत की औलाद नही। समझूंगा, किसी भगी ने पैदा किया था मुझे।"

काका ने मुंह जूठा किया। और वही बैठक में लेट गये। इस सच्चाई को एक गुजरे हुए सपने मे तब्दील करते रहे। मगर हर बार असफल हो

जाते। बगल में शशि बाबू की बातें रोशनी के फव्वारे बिखेरतीं। पर वे हवा में आते ही विलीन हो जाते। उनकी जगह रह जाती, कुछ काली केंचुलें। जो उछलकर काका तक जातीं। और शशि बाबू की ओर लौट आतीं।

कैसे-कैसे दिन थे!

□ □

कई रोज बीत गये। गाँव में खुसफुसाने लगी खबर, कि पड़ोस के गाँव में बिसेसर सिंह के दरवाजे धान के चट्टे लगे हैं। दूर से ही पहचाना जा सकता है। बात-फुसफुसाहटों से चली और सायरन बनकर गूँज गयी। मगर शशि बाबू की चिन्ता ट्रांजिस्टर की उन सूचनाओं में थी, जिनमें कहा गया था कि आगामी चौबीस घन्टे मौसम सूखा रहेगा।…एक बुढ़िया जिसकी उम्र सत्तर वर्ष है, खो गयी है।…

आखिर काका ने ही जिक्र छेड़ा।

"शशि बाबू, सुना है मेरे खेत पर हाथ साफ करने वाले बिसेसर सिंह हैं!"

"अरे नहीं पाण्डेय जी, किसने भड़का दिया आपको?" शशि बाबू ने हँस दिया।

पर काका और भी गंभीर हो उठे, "लोग तो बता रहे हैं कि आँखों देख आये हैं।"

"हाँ, लोग तो कहेंगे ही। मेरी आप से दाँत-काटी रोटी है। यह बात इस गाँव के लोगों को फूटी आँखों भी नहीं सुहाती। लड़ाई के लिए कुछ तो चाहिए ही। सो बिसेसर को ही जरिया बना बैठे। आखिर बिसेसर मेरा रिश्तेदार जो ठहरा।"

शशि बाबू तैश में थे। मगर काका वैसे ही आँख फेरे बैठे रहे। शशि बाबू को लगा कि उनका तर्क एकदम खाली गया। अचानक उन्होंने दूसरा दाँव फेंका।

"मगर एक बात है गुरुवर!"

"क्या ?"

"इस दुनिया में किसी का भरोसा नही। वरना आस्तीनों में साँप कैसे होते ? मेरी मानिये तो आप वहाँ जाकर खुद देख आइये।"

"सो तो है। लेकिन उससे फायदा ?"

"फायदा क्यों नही होगा ? गला नापकर रख दूंगा। रिश्तेदार होंगे अपनी जगह। किन्तु आपसे ज्यादा प्रिय थोड़े ही है।"

···काका घर से निकल पड़े।

□ □

बिसेसर सिंह का गाँव।

माहौल में एक सोयी हुई नदी का ठहराव था। पर काका के चरण पड़ते ही उसमे उछाल आ गया। वही फुसफुसाहटे, कानों-कान। चेहरों से पिघलती हुई सहानुभूति।

बिसेसर बाबू दरवाजे पर ही मिल गये। काका को देखते ही उठ खड़े हुए।

"प्रणाम पंडित जी, आइये-आइये। बहुत दिन पर पधारे।"

और सहसा बिसेसर बाबू काका की निगाह ताड़ गये। होंठों से दया-दृष्टि फूट पड़ी, "सुना है, आपकी फसल चोर काट ले गये ? आप बर-दाश्त कर ले गये, अच्छा ही किया। पचेगा नही, भुखमरों को। अन्धे हो जायेंगे, नालायक।"

क्षण भर में काका ने पूरा निरीक्षण कर लिया। वही लम्बे-लम्बे पौधे। लम्बी बालियाँ। दूर तक बोझो के चट्टे। पूरे दस एकड़ के। अपने निर्माता के सामने। मगर इस तरह मुँह फेरकर पड़े थे, जैसे पराये घर का एहसास उनके भीतर गहरे तक उतर गया हो। उन्हें काका की कायरता से चिढ़ हो। और ऐसे दयनीय आदमी से वे अपना रिश्ता कतई नही जोड़ना चाहते।

मजूरिने धान पीटने में लगी थी।

बिसेसर बाबू काका के लिए परेशान थे, "बैठिये, शर्बत पीकर जाइये।
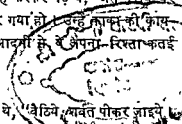
"...अरे-अरे, ऐसे कैसे चले जायेंगे। बड़े भाग्य से तो आपके दर्शन होते हैं!"

काका रुके नहीं। उनके भीतर हृचचल शुरू हो गयी। लगा कि अभी कुछ क्षणों में वे चेतना खो बैठेंगे।...मुंह में धोती का छोर दबाकर भागे। भागते रहे, भागते रहे—जैसे पाँवों में दैवीय शक्ति आ गयी हो।

गाँव पहुँचकर वे शशि ठाकुर की बैठक में फूट-फूटकर रोने लगे।

बिसेसर बाबू उन क्षणों में ठहाके लगाते रहे, "देखो इस बभना का! घी देने पर नरियाता है, हरामखोर।"...

...अन्ततः शशि बाबू उबल पड़े, "तो रोते क्यों हो? चलो, थाने चलते हैं। रपट दर्ज करायेंगे। समझ क्या रखा है बिसेसरा ने अपने को?"

पर काका के भीतर का जलाशय कम ही न हो रहा था। लोगों ने समझाया, रोने से काम नहीं चलेगा। यही ठीक रहेगा, थाने हो आओ।

काका ने हिचकियों के बीच कपड़े बदले। थाने के लिए तैयार हो गये, तो शशि बाबू ने कहा, "पाण्डेय जी, कुछ सुंघाने के लिये भी चाहिए। अफसर और कुत्ते में कोई फर्क नहीं होता। आपके लिए तभी गुर्रायेगा, जब आप उसे रोटी डालेंगे। हालांकि दरोगा अपना आदमी है। लेकिन आपको हर तरह से तैयार रहना चाहिए।"

"सो तो है। लेकिन मेरे पास तो कानी कौड़ी भी नहीं है।"

"उसकी चिन्ता आपको नहीं करनी है। मैं तो हूँ ही। लेकिन जो असलियत है, आपसे बता रहा हूँ।"

और काका उस असलियत से परिचित होकर भी अपनी गर्दन पर तलवार रखने जा रहे थे।

दोपहर पूरी तरह उतर आयी थी।

मगर थाने का माहौल देखकर घड़ी और सूरज पर एक साथ शक होता था। गोया उनकी अपनी घडी, अपना सूरज हो। और उसने अभी-अभी आँखें खोली हों। सिपाही अब भी कम्पाउंड में दंड-बैठक लगा रहे थे। उनकी देह की मिट्टी और लंगोट इस बात को बहुत तल्खी से बयान कर रहे थे, कि देश की जरूरतों के चलते उन्हे पुलिस का बाना धारणकर इस कर्मभूमि में उतरना पड़ा। वरना अखाडे में उतरते तो हजारों दाराशिहों को पानी पिला देते।

दरोगा धूप में बैठा मालिश करा रहा था। देखने-सुनने में वह शक्ल और अक्ल—दोनों से पहलवान लगता था। मगर पिछले दिनों एक दुर्घटना मे लोगों ने उसे शायर करार दिया। हुआ यह कि अपने नायब की विदाई में, किसी पुरानी किताब से एक नज्म लेकर, उसने अपने नाम से सुना दी। और चूँकि उस शायर जैसे ऊँट से देहात की विद्वान जनता का कभी पाला नही पड़ा था, इसलिए लोगों ने उसे दरोगा जी की नज्म मानकर मुक्त कंठ से दाद दी। और दरोगा जी की शायरी का झंडा पूरे इलाके मे फहर गया।

फिर तो वे अशरफ अली से, जनाब अशरफ अली 'कातिल' बन बैठे। उन्होंने एक-से-बढ़कर एक मुहब्बत के शेर कहे। मेहतरानी से दिल लगाया। माशूका की याद में पलकें बिछायी। अश्कों की गंगा-जमना बहायी। रात-रात भर नींद हराम की। और महज एक झलक पा लेने के बाद, सारी उम्र विरह में काट देने के वायदे किये। और भी पता नहीं, क्या क्या !···हालांकि कातिल साहब की बेगम साहिबा की शक्ल-सेहत में, औरत में भैंस की समन्वित छवि देखने को मिलती थी। उनकी घुडकियों के चलते, कातिल साहब की क्या मजाल जो किसी परायी औरत से असनाई की सोचे।

और जब पिछली शाम होली से किसी लफंगे के भ्रम में, कातिल साहब एक छोकरे को बरामद कर लाये, तो पता चला कि वह आम लफंगा नहीं, शायर है। और उर्दू की प्रगतिशील कविता से जुड़ा है। उसने बताया कि प्रेम-मुहब्बत की शायरी के दिन लद गये। अब तो प्रगतिशीलता का जमाना है।

उस दिन से कातिल साहब ने माशूका की ओर देखना भी बन्द कर दिया। माशूका ने हजार अदायें दिखायी। लाख रिझाया। चिरौरी-मिन्नतें कीं। मगर कातिल साहब ने उसकी एक न सुनी। और दौड़ पड़े प्रगतिशीलता का दामन पकड़ने। फिर तो उन्होंने देश की गरीबी को होंठों से जाम की तरह लगा लिया। इलाके के अपराधियों पर नजर रखने की बजाय, देश पर नजर रखना शुरू किया। कान्स्टेबिल खबर लाते—हुजूर, अभी-अभी सवर्णों ने पाँच गरीब हरिजनों को लूट लिया !··· कातिल साहब 'गरीबी हटाओ' पर शेर कहने लगते।···सूचना आती —दो अनाम व्यक्तियों की नृशंस हत्या !···कातिल साहब घटना-स्थल पर जाने की बजाय मेज पर बैठ जाते। उनकी कलम से दर्दीले बोल फूट पड़ते—

> गरीबों की जगह गजब होती है।
> इन्हें फूलगेंदवा न मारो।···

और आज, जब शशि बाबू पाडेय जी को लेकर थाने पहुँचे तो कातिल साहब कविता की झोपड़ी से एक गरीब सुन्दरी को निकालकर, उसके स्तन न ढक पाने वाले कपड़ों के लिए, अपने देश को धिक्कार रहे थे। मालीशिया चम्पी कर रहा था। मगर कातिल साहब की डायरी खुली थी। सामने धूप मे, जमीन पर उकड़ूँ बैठे दो कैदी वाह-पर-वाह किये जा रहे थे। हालांकि पिछली शाम कातिल साहब द्वारा की गयी पिटाई उन्हें बार-बार 'आह' करने पर मजबूर कर रही थी। वे इस खयाल से खुश थे कि अब कातिल साहब उनके साथ बेतों की बजाय शायरी से पेश आया करेंगे।

शशि बाबू को देखते ही कातिल साहब मुस्कराकर खड़े हो गये। और मालीशिये को कुर्सी लाने का आदेश दिया।

☐ ☐

यों कातिल साहब पहले थानेदार हों, जिनसे शशि बाबू की इतनी प्रगाढ़ मैत्री हो, ऐसी बात नहीं थी। आजादी से पहले देश में ऐसा शासन-तन्त्र था कि शशि बाबू जनता होते हुए भी, जनता से हजारों मील ऊँचाई पर थे। इलाके की हर अफसरी, उनके पिता को झुककर सलाम करती थी। मगर उन्ही दिनों गाँधी नामक एक चूहे ने उस तन्त्र को कुतरना शुरू किया। अन्ततः पूरी तरह कुतर डाला। देश में जगह-जगह नारे लगे—

इन्कलाब—जिन्दाबाद !

हिन्दुस्तान—किसानों का देश है !

जमीदारों की तानाशाही—नहीं चलेगी, नहीं चलेगी !

···और पता चला, देश अब अफसरों के नहीं, कांग्रेसियों के हाथ में है। जिनकी खरीद-फरोख्त संभव नहीं। और जो अत्याचार के खिलाफ हजारों बलि देने की शिक्षायें देते फिर रहे हैं।

शशि बाबू के पिता हैरान हो उठे। अब क्या करे ? एक बेताज बादशाह स्वयं को भिश्ती पाकर हैरान रह गया।

मगर ये बाते अधिक दिनों तक नही चली। जनतन्त्र नामक चिड़िया, जो नेताओं की टोपी से उडी थी, लौटकर उन्ही की जेबों मे दुबक गयी। कुछ ही दिनों बाद देश हत्या-बलात्कार, डकैती-लूट और आगजनी की घटनाओं मे डूब गया। धन्धा चल निकला। और शशि बाबू के पिता ने अपनी विरासत बेटे को सौंपकर, खुशी-खुशी इस कर्म से संन्यास ले लिया।

शशि बाबू व्यस्त हो गये।

किसी को अपने खेत के लिए बीज चाहिए—शशि बाबू ब्लाक जा रहे है।

एक ने दूसरे की टाँग तोड़कर उसके हाथ मे थमा दी—शशि बाबू 'निर्बल के बलराम' बनेंगे।

किसी ने, किसी को सरेआम लूट लिया—शशि बाबू आधी रकम वापस दिलाकर न्याय करेंगे।

इलाके के लोग समझौते जैसी सेवा का मौका नही देते—शशि बाबू खाँ को शेख से लड़वायेंगे।

और इस तरह अनगिन मोड़ों से गुजरकर शशि बाबू की जनसेवा कीर्तिमान स्थापित कर रही थी। इसके लिए जरूरी था कि उनमें परिन्दा पालने का बेशुमार गुण हो। गुण था भी। उनके पास रंग-बिरंगे पिंजरे थे। परिन्दा किसी भी महकमे का हो, उसे कोई तो पिंजरा पसन्द होगा ! शशि बाबू उनके लिए ऐसी कामधेनु थे, जिनसे हर मनोवांछित फल प्राप्त हो सकता था। अकसर उनकी बैठक में महफिले जमती। घुंघरुओं की छम-छम पर हसरते जवान हो उठती। गहराती रात के साथ उनके कार्य-कलाप इतने बढ़ जाते, कि जन्नत को भी अपनी बदसूरती का एहसास होने लगता।

पर पिछले दिनों इलाके में जो नया थानेदार आया, किसी दूसरी दुनिया का आदमी था। उसने देहात से चोरी-डकैती का नाम मिटा दिया।

गुण्डों को चौराहों पर पिटवाया। इज्जतखोरों को नंगा घुमाया, थूककर चटवाया, जूता घाया सुं। परिणामतः देहात रहजनो से खाली हो गया। शराबघरों से लफंगे गायब हो गये। पूरा इलाका शान्त। दस दिन मे शान्त। हर कही उसके नाम की चर्चा थी। हर कही उसका आतंक। पता नही, कब किसकी बारी आ जाये!

एक बार जब अपनी अदा से शशि बाबू ने पुट्ठे पर हाथ रखने की कोशिश की तो उसने साफ कह दिया, "ठाकुर साहब, तुमने थानेदार नही, हिजडे देखे होगे। आइन्दा कभी यहाँ पैर रखा तो गधे के मूत से तुम्हारी मूँछें मुड़वाऊँगा।"···फिर तो वे उड़न-छू होकर भागे।

शशि बाबू की महफिले बन्द हो गयी। धन्धा ठप पड़ गया। दरवाजे से रेत के बवंडर 'हू-हू' करते गुजरते। शशि बाबू बिस्तर पर दिन-दिन भर करवटे बदलते रहते। एक लम्बा अन्तराल यूँ ही गुजर गया।

और जब उस थानेदार के ट्रांसफर के बाद जनाब अशरफ अली ने थाने का कार्यभार ग्रहण किया, तो देहात के सभी शशि बाबुओं के चेहरे आशान्वित हो उठे। लेकिन पिछले थानेदार ने उनके भीतर इतना आतंक भर दिया था कि वे एकाएक अशरफ अली से सट नही सके। दूर से ही उनकी आदतों का जायजा लेते रहे। मगर लोगों से जो पता चला, उसके अनुसार अशरफ अली पिछले थानेदार की तरह बनैले तो नही थे। हाँ जिन्दगी की रंगीनियों मे उन्हे दिलचस्पी हो, ऐसा भी नही था। अशरफ अली थानेदार जरूर थे, मगर शरीफ आदमी थे। और ऐसे कम्बख्तों का क्या भरोसा!

शशि बाबू पहले की तरह चिन्तित थे। उन्हीं दिनों देहात में यह चर्चा जोरों से शुरू हुई कि नये थानेदार श्री अशरफ अली एक शरीफ आदमी ही नही, जिन्दादिल शायर भी है। यह खबर शशि बाबू तक जैसे ही पहुँची, उन्होंने सोचना शुरू किया। गंभीरता से सोचा। कई दिनों तक शराब नही पी। भंग नही खायी। और न छानो ठंडाई। अन्ततः सोच ही लिया। उनके चेहरे पर खुशी के सौ-सौ सैलाब उमड़ पड़े। वे

दौड़कर शहर गये। एक डायरी और प्रकाश पंडित से सम्पादित उर्दू रुबाइयों की चन्द किताबें खरीद लाये।

शशि बाबू शायरी करने बैठे। ग़ालिब को ज़ौक से मिलाया। मोमिन को दाग़ से जोड़ा। सलाम को अपनी तरह मरोड़ा। अन्ततः एक-सवा पाव शायरी तैयार कर डाली। और पहुँच गये कातिल साहब की ख़िदमत में सलाम ठोंककर—

"हुज़ूरेआला, नाचीज को शशिप्रताप सिंह 'दिलफेंक' कहते हैं। आप इतने बड़े शायर, इतने दिन हो गये आपको इलाके में आये हुए, लेकिन कद्रदानों को खबर तक न लगने दी! आपकी पर्दानशीनी का जवाब नहीं। मगर यह तो उर्दू-अदब के साथ अन्याय है, सरकार!"

कातिल साहब ने शशि बाबू के आईने में अपनी शक्ल देखी और मध्यकालीन नायिका की तरह लजा गये। अधखुली पलकों से बोले, 'तो क्या करूँ?'

"आप सब कुछ कर सकते हैं शायरे आजम! आपकी रुबाइयाँ सुनकर जनता में जोश पैदा होगा। लोग अन्याय के खिलाफ़ मर मिटेंगे। इलाके में बलात्कार-दंगे जैसी घटनायें नहीं होंगी। जनता जो भी करेगी, प्रेम से करेगी। चारों ओर अमन-शान्ति छा जायेगी। लोग कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलेंगे। हुकूमत के क्षेत्र में एक मिसाल कायम हो जायेगी, सरकार!"

"मगर जनता मेरे जज्बात सुनेगी कैसे?"

"सुनेगी सरकार! अगले हफ़्ते हम आपकी सदारत में एक मुशायरा रख रहे हैं। ख़ाकसार को हुक्म तो दें।"

कातिल साहब पानी-पानी हो उठे। उन्होंने बार-बार मना किया। पर शशि बाबू ने उनकी एक न चलने दी। और इस तकलीफ़ को कातिल साहब ने वैसे ही स्वीकार कर लिया, जैसे कोई नवयौवना 'हाँ' 'ना' के बीच अपने माशूक की मुहब्बत स्वीकार करती है।

☐ ☐

मुशायरे की शाम, बड़ी गजब की शाम थी। एक-से-बढ़कर एक शायर तशरीफ लाये थे। मगर कातिल और दिलफेक साहब के सामने अधिकांश शहीद हो गये। जो बच गये, उन्होने हथियार डाल दिये। कब्र से दाग़, ग़ालिब, ज़ौक सिर धुनते रहे। और इधर दोनों शायर, उनके शेरो को सुधारकर बडी अदा के साथ अपने नाम से पढ़ते रहे।

उस शाम दोनो ने एक-दूसरे के कुंडल मे कस्तूरी देखी। और जो एक बार देखा तो देखते रह गये। यूँ तो कातिल साहब को दिलफेक साहब की सम्पूर्ण शायरी अच्छी लगी। मगर जो सबसे लाजवाब शेर लगा, वह था—

जिस दिल मे तेरा दिल न हो जालिमा
उस दिल से हमें तो खेलना नहीं।···

खाने पर, कातिल साहब ने जब इसकी श्रेष्ठता का जिक्र किया तो दिलफेक साहब उदास होकर बोले, "भाईजान, देर हो गयी। इस शेर को रजिस्टर्ड करा लेना चाहिए था। सुना है, किसी साहिर नामक शख्स ने कुछ रद्दो-वदल कर इसे अपने नाम से फिल्म मे दे दिया है।"

कातिल साहब भड़क उठे, "कौन साहिर? कहाँ रहता है? मेरा मतलब किस थाने के अन्तर्गत आता है? वहाँ थानेदार कौन है? जरूर मेरा कोई दोस्त होगा। पता लगाकर बताओ।"

···इस तरह कातिल साहब और शशि प्रताप सिंह 'दिलफेक' की शायरी चल निकली। दोनों ने अपने-अपने लंगोट सम्हाले। और उर्दू शायरी को एक नया मोड़ देने की सोचने लगे।

फिलहाल उर्दू शायरी में मोड आये न आये, मगर शशि बाबू की जिन्दगी में मोड़ जरूर आया। हालांकि कातिल साहब पूरे सन्त थे। पर जब शायरी करने लगे तो कुछ शायराना आदतों का होना जरूरी था। इन आदतों के चलते, शशि बाबू की महफिलें फिर जुड़ने लगी। कातिल साहब पूरी तरह हत्थे चढ़ गये तो शशि बाबू ने असामाजिक तत्वों को शह दे दी। देहात फिर समस्याओं मे डूबने लगा। और समाधान के

लिए लोग शशि बाबू को याद करने लगे ।

शशि बाबू पहले की तरह व्यस्त हो गये ।

□ □

मालीशिया कुर्सी ले आया तो शशि बाबू ने उस पर विराजने की तकलीफ की । और अपने बे-वक्त आने पर अफसोस किया । बोले, "कबाब में हड्डी बन बैठा, भाईजान ! लगता है कुछ रंगारंग चल रहा था ।"

"अरे नहीं दिलफेक साहब, आप आये—हमारी किस्मत···। सुबह से मूड खराब था । सोचा, दो शेर कह डालूं ।···वही सुना रहा था !"

"मगर बात क्या है ?!" शशि बाबू चिन्तित हो उठे ।

कातिल साहब ने बताया कि उनकी शायरी की चर्चा मिनिस्ट्री तक पहुँच चुकी है, कि सरकारी आदमी होकर भी वे सरकार के खिलाफ शेर कहते हैं । मुख्यमंत्री ने कलक्टर को आदेश भेजा है कि अगर यह सच है तो तुरन्त ऐक्शन लिया जाय ।"

"यह तो बहुत बुरा हुआ भाईजान !"

"तो मेरा क्या उखाड़ लेंगे ?" कातिल साहब ने इस तरह हँस दिया, जैसे इस मामले से निपटना उनके बायें हाथ का खेल है । और अगर कहीं उन्होंने दायाँ हाथ लगाया तो चीफ मिनिस्टर की भी कुर्सी खतरे में पड़ जायेगी ।

हालांकि कातिल साहब के कथन के अनुसार बातें उनकी नौकरी पर बन आयी थी, मगर ऐसे में भी एक असली फनकार की तरह उन्हें सिर्फ अदब की चिन्ता थी । बोले, "कैसा जमाना आ गया है ! पहले चोर-उचक्के पढ-लिखकर हमारे महकमे में आते थे । आजकल मिनिस्ट्री में जा रहे हैं । हमारे भाई-बन्धु, हमी पर रोब जमा रहे हैं । टेम्परेरी होकर परमानेन्ट को आँख दिखा रहे है ।"

"वाह-वा, क्या बात कही है आपने !"

"और सच तो यह है दिलफेक साहब, कि सब मेरी प्रतिभा से जलते

हैं। जितना नाम नहीं मिला, उससे अधिक निन्दा करने वाले हो गये।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है भाईजान! इसी पर तो मैंने एक शेर कहा है।"

"क्या ?"

"कि, निन्दक नियरे राखिये। आगन कुटी छवाय।"

कातिल साहब उछल पड़े, "भई दिलफेंक साहब, आपका भी जवाब नहीं। एक-एक लाख के शेर कहते हो। इसे कब कहा ?"

"अभी-अभी कहा है। यहाँ आने से आधे घन्टे पहले।"

"वाह, क्या शेर है!" कातिल साहब बाग-बाग हो उठे।

मगर तभी अचानक उनके माथे पर बल पड़ गये। बोले, "लगता है, पहले भी कहीं सुना है।"

"जरूर सुना होगा भाईजान!" शशि बाबू वैसे ही हरे थे, "दर-असल मेरे वालिद मरहूम को भी शेर कहने की लत थी। और इसी से मिलता-जुलता एक शेर उन्होंने भी कहा था।"...

शशि बाबू और कातिल साहब आपस में शेर लड़ाते रहे।

और पास बैठे काका सिर खुजलाते रहे। अचानक शशि बाबू को काका की याद आयी। और वे आवाज को तल्ख करते हुए बोले, "भाई-जान आज मैं एक विशेष काम से आपके पास आया हूँ।"

"फरमाइये"

शशि बाबू ने परिचय कराया, "आप हैं देहात के प्रसिद्ध किसान श्री मदन पान्डेय।"

काका ने दोनों हाथ जोड़ लिये। शशि बाबू ने करुण होकर पूरा वाकया बयान किया, कि किस तरह अपने बेटों से दुश्मनी मोल लेकर उन्होंने बैंक से कर्ज लिया! खून-पसीना बहाकर फसल उगायी। मगर नसीब का दोष, बेचारे आज इस हालत में हैं।

"यह तो देश का दुर्भाग्य है कि इन जैसे कर्मठ आदमी का लहू पानी के मोल हो गया है।" कातिल साहब जोश में आ गये। कहने लगे,

"दिलफेक साहब, पिछले दिनों इसी मुद्दे पर मैंने कई शेर कहे। मगर जनता सुने तब न ! आप एक काम कर सकते हैं ?"

"हुक्म दीजिए।" शशि बाबू भी उत्साहित थे।

"एक मुशायरा और रख लीजिए। मेरी नज्मों से जनता पर शायद असर पड़े !"

"बेशक-बेशक।"

शशि बाबू ने काका के लिए यह तकलीफ भी गवारा कर ली।

और वे मुशायरे की तारीख पक्की कर, शायरों की लिस्ट बनाने लगे। कातिल साहब ने डायरी से नज्मों का चुनाव करना शुरू किया, कि उस दिन कौन-कौन सी नज्में पढ़े, जो इलाके के सारे रहजनों के दिलों पर इस तरह छा जायें कि वे पराया माल जनता में लुटाकर, सीधे जंगल चले जाये।

कातिल साहब ने कहा, "मगर दिलफेक बाबू, ये नज्में सच्चे समाजवाद की माँग करती है, चलेंगी ?"

"बिल्कुल चलेगी भाईजान। आप तो प्रधानमंत्री की आवाज को बुलन्द कर रहे हैं।"

कातिल साहब हँस पडे, "आप भी किसका जिक्र कर बैठे ! प्रधानमंत्री क्या खाकर समाजवाद लायेंगी ? जो हुकूमत एक थानेदार की शायरी में टाँग अड़ाती हो, वह समाजवाद लायेगी ?"

"कभी नही भाईजान, कभी नही।"

"दिलफेक बाबू, चीफ मिनिस्टर को भी क्या सूझी है ! मैं यहाँ कुर्सी पर बैठकर बिटिया की शादी के लिए तो परेशान हूँ नही। मैं भी तो देश के लिए ही शायरी करता हूँ।"

"देश का भाग्य है, भाईजान।"

"और सच तो यह है दिलफेक बाबू···" कातिल साहब को बीच में ही चुप हो जाना पड़ा। क्योंकि उनका वाक्य शशि बाबू ने पूरा किया "···कि शायर दरोगा हो, जरूरी नही। पर हर दरोगा को शायर होना

ही चाहिए।"

"अरे दिलफेंक बाबू, आपने तो मेरे मुँह की बात छीन ली। एक स्वतंत्र लेखक का साहित्य लोग कहाँ पढ़ते हैं ? साहित्य तो डंडे से पढ़ाने की चीज है।"

...शशि बाबू ने गर्व से काका की ओर देखा। पर उनके चेहरे पर, उन दोनों विद्वानों की बातचीत का कोई असर नहीं था। हारकर शशि बाबू को विषय पर लौटना ही पड़ा, "लेकिन भाईजान, पहले पाडेय जी को फसल-काड की जाँच कराइये। और अपराधी साबित हो तो बिसेसरा को भिगोकर जूते लगाइये।"

शशि बाबू ने कातिल साहब की हथेली पर सौ-सौ के पाँच नोट रख दिये।

"ये पाडेय जी की ओर से आपको छोटा-सा तोहफा। पांडेय जी दिलदार आदमी है। आपकी और सेवा करेंगे। लेकिन इन्हें न्याय मिलना चाहिए।"

"न्याय तो इन्हें मिलेगा ही। मगर यह आप क्या कर रहे हैं ? मैं रिश्वत को हाथ भी नहीं लगाता। पाडेय जी से कहिये, देना ही है तो अदब के नाम पर डोनेशन दें। कोई अगला मुशायरा कर लेंगे।"

"तो यह डोनेशन ही समझिये।" शशि बाबू ने सौ का एक और नोट उसमें मिला दिया। काका सिर हिलाकर हाँ कह उठे।

रुपये लेकर कातिल साहब ने काका के साहित्यिक योगदान की प्रशंसा की। 'रिश्वत हराम है' पर गजल सुनायी। और तुरन्त जाँच करने का आश्वासन देकर विदा किया।

काका घर लौट आये। शशि बाबू थाने में ही रुक गये, इस कथन के साथ कि इलाके के और भी कई लोग आने वाले हैं। उनकी समस्याओं पर भी कातिल साहब से बात करनी है।

शशि बाबू अब अपने असली रूप में थे। कातिल साहब ने,

"सच बताइये, बात क्या है ?"

"बात कुछ नहीं भाईजान, इस ब्राह्मण का दिमाग खराब है। बैठे-बैठे खुराफात किया करता है। कल आप बिसेसर के यहाँ हो आइयेगा। बुड्ढे को तसल्ली हो जायेगी।"

इस निर्णय के साथ शशि बाबू ने काका-प्रसंग समाप्त कर दिया। कातिल साहब ने तली हुई मछलियाँ और रम की बोतल मंगायी। रात तक वे शायरी के आयाम खोलते रहे।···

□

विसेसर सिंह । यानी एक और शशि बाबू ।···

खबर पहले ही पहुँच गयी थी कि कातिल साहब मदन पाण्डेय की फसल-सम्बन्धी जाँच करने आ रहे हैं । विसेसर के लिए जांच-प्रसंग उतना महत्वपूर्ण न था । महत्वपूर्ण यह था कि कातिल साहब आ रहे हैं । कातिल साहब पहले भी आते थे । अपने शायराना शौक फरमाते थे । देहात के छोटे-बड़े झगड़े तय करते थे । और तरोताजा होकर लौट जाते थे ।

यह भी दिन था कि विसेसर अपने ही कटघरे में खड़े होने वाले थे । मगर 'कटघरा' शब्द जितना भी खौफनाक हो, उसकी दीवारें बिसेसर के हाथों निर्मित हुई थीं । बिसेसर आश्वस्त थे । दीवारें कितनी खौफनाक होंगी, अपने निर्माता के लिए ? दीवारें हथकड़ियाँ नहीं पहना सकतीं । फांसी का फन्दा नहीं बना सकतीं । आँखें नहीं तरेर सकतीं । वे 'ही-ही' हँस सकती हैं । सिर हिलाकर मनोरंजन कर सकती हैं । सलाम बजा सकती हैं । फिर ऐसे में डर ? कैसा डर ?

बिसेसर निश्चिन्त थे । उन्हें चिन्ता थी तो केवल इस बात की, कि कातिल साहब को कितना खिलायें, कैसे खिलायें, कैसे रिझायें ?

तैयारियाँ कर ली गयी थीं। फिर भी जितना हो, अधूरा लगता था। शराब कितनी होगी, कौन-सी होगी? गोश्त किसका होना चाहिए? कातिल साहब को वनमुर्गियाँ पसन्द हैं। पर वनमुर्गियाँ अब कहाँ हैं गाँव में? चकबन्दी भी क्या वाहियात चीज है! सरकार की ऐसी-तैसी। सारे बंजर भूमिहीनों में बाँट दिये। और ये भुखमरे बंजर की झाड़ियाँ काट-कर उस पर फसलें उगा रहे हैं। वनमुर्गियाँ इन झाड़ियों में बसती थीं। अब गाँव छोड़कर चली गयी। जंगल की तलाश में उड़ गयीं। अमीरों का जीना मुश्किल हो गया है।

लेकिन वनमुर्गियाँ तो होनी ही चाहिए। वनमुर्गियाँ आयेंगी। जंगल-पहाड़ ढूँढकर आयेंगी। पाताल तोड़कर आयेंगी। कातिल साहब ने कभी कहा था—गोश्त वनमुर्गियों का हो तो मयकशी जन्नत दे जाती है।···

पर कितना अर्थहीन है जन्नत, मुजरे के बिना। कातिल साहब शरीफ आदमी हैं। कहते हैं, बिना मतलब बदनामी मिलती है। नेताओं तक शिकायत पहुँचती है। ये आजकल के लौंडे-लपाड़े मिनिस्टर, खाक सम-झेंगे नवाबी रस्मे। इन्होंने जलवे नहीं देखे। जश्न नहीं देखे। भूख-गरीबी देखी है। हिन्दुस्तान नहीं देखा। अगर ये वाजिद अली शाह के जमाने में होते तो उन्हें भी कटोरा देकर सड़क पर खड़ा कर देते। कहते—शाहंशाह, अब अमीरी के मूल्य बदल गये हैं। पेट दिखाओ, शान से जीना सीखो।···

अच्छा ही है। शाकाहार से स्वास्थ्य उत्तम रहता है। कातिल साहब शाकाहारी आदमी हैं। फलों का रस पीते हैं। गूदे को हाथ भी नहीं लगाते। और कुमुदी भी बड़ी गजब की चीज है। उसमें गूदा कहाँ है? जिधर से छू दो, रस निकल आयेगा। कुमुदी 'उफ' करेगी, और कातिल साहब सराबोर हो जायेंगे।

कुमुदी अथवा कुमुद। यह गाँव वालों के लिए एक परिचय है, सम्बोधन है। पर वह कुमुद कहाँ है? कुमुद का रहस्य तो बिसेसर जानते हैं। लखनऊ में दारुलसफा के चेहरे पर आज भी कुमुद की छुवन उतनी

ही मादक होकर पड़ी होगी। इतने वर्षों के बाद, सुदूर गाँव में चिलम पीने वालों की आँखें कैसे पढ़ सकती हैं उसका चेहरा, कि कुमुद प्रदेश के बहुचर्चित विधायक एवं भूतपूर्व मंत्री अष्टभुजा की लाडली बेटी मधु शर्मा है !···

वे भी क्या दिन थे, जब बिसेसर के दरवाजे पर अष्टभुजा का मजमा होता था ! यही सलीके। यही उत्सव। सिर्फ शख्सियत का फर्क था।

बिसेसर की रातें भी उन दिनों अकसर दारुलसफा में कटती। मधु तब जवान हो रही थी। अष्टभुजा जी को राजनीति से ही फुर्सत नहीं थी। उन्हें मिनिस्टर बनना था। घर पर सेवकों और सजदा करने वालों का जमघट लगता था। सेवकों ने सेवा की। सजदे में सर झुकाया। और मधु वक्त से पहले जवान हो गयी। उसकी जवानी का सगीत दारुल-सफा की सीमाओं में छम-छम .बजने लगा। दिन के शोर से लेकर रात के सन्नाटे तक मे पारखी उस सगीत को बड़ी तन्मयता से सुनते। कर-वटें बदलकर रात गुजारते। जो साहस करते, उसका स्वाद चखते।

और उन साहसी लोगों मे एक दुस्साहसी भी निकल आया ! मधु शर्मा—दारुलसफा की चिड़िया, पंख फैलाकर उड़ गयी। अष्टभुजा शर्मा ने सुना तो उनकी आँखें कुछ क्षणो के लिए पथरा गयी। मगर वे नेता थे। उन्हे देश का चरित्र बनाना था। अपने व्यक्तिगत में उन्हे नही उलझना चाहिए। वे नही उलझे। कानो-कान किसी को खबर तक न होने दी। और प्रचारित कर दिया, कि मधु अपने पैतृक आवास पर, दादी की सेवा के लिए गाँव चली गयी।···

उस चिड़े ने मधु को बहुत उड़ाया, बहुत नीलाम किया। और एक लम्बे अन्तराल बाद वह पिता की देहरी पर लौट आयी। मधु अब पहले से बहुत बदल गयी थी। उसमें यौवन की लाली तो थी। पर यात्राओं की मार ने उसके ऊपर से किसी मिनिस्टर की बेटी होने की पहचान दी थी। अष्टभुजा शर्मा इस बार भी अपने व्यक्तिगत से नहीं

तैयारियाँ कर ली गयी थी। फिर भी जितना हो, अधूरा लगता था। शराब कितनी होगी, कौन-सी होगी ? गोश्त किसका होना चाहिए ? कातिल साहब को वनमुर्गियाँ पसन्द हैं। पर वनमुर्गियाँ अब कहाँ हैं गाँव में ? चकबन्दी भी क्या वाहियात चीज है ! सरकार की ऐसी-तैसी। सारे बंजर भूमिहीनों में बाँट दिये। और ये भुखमरे बंजर की झाड़ियाँ साफ कर उस पर फसलें उगा रहे हैं। वनमुर्गियाँ इन झाड़ियों में बसती थीं। अब गाँव छोड़कर चली गयी। जंगल की तलाश में उड़ गयी। अमीरों का जीना मुश्किल हो गया है।

लेकिन वनमुर्गियाँ तो होनी ही चाहिए। वनमुर्गियाँ आयेंगी। जंगल-पहाड़ ढूँढकर आयेंगी। पाताल तोड़कर आयेंगी। कातिल साहब ने कभी कहा था—गोश्त वनमुर्गियों का हो तो मयकशी जन्नत दे जाती है।···

पर कितना अर्थहीन है जन्नत, मुजरे के बिना। कातिल साहब शरीफ आदमी हैं। कहते है, बिना मतलब बदनामी मिलती है। नेताओं तक शिकायत पहुँचती है। ये आजकल के लौंडे-लपाड़े मिनिस्टर, खाक समझेंगे नवाबी रस्मे। इन्होंने जलवे नहीं देखे। जश्न नहीं देखे। भूख-गरीबी देखी है। हिन्दुस्तान नहीं देखा। अगर ये वाजिद अली शाह के जमाने में होते तो उन्हें भी कटोरा देकर सड़क पर खड़ा कर देते। कहते—शाहंशाह, अब अमीरी के मूल्य बदल गये हैं। पेट दिखाओ, शान से जीना सीखो।···

अच्छा ही है। शाकाहार से स्वास्थ्य उत्तम रहता है। कातिल साहब शाकाहारी आदमी हैं। फलों का रस पीते हैं। गूदे को हाथ भी नहीं लगाते। और कुमुदी भी बड़ी गजब की चीज है। उसमें गूदा कहाँ है ? जिधर से छू दो, रस निकल आयेगा। कुमुदी 'उफ' करेगी, और कातिल साहब सराबोर हो जायेंगे।

कुमुदी अथवा कुमुद। यह गाँव वालों के लिए एक परिचय है, सम्बोधन है। पर वह कुमुद कहाँ है ? कुमुद का रहस्य तो बिसेसर जानते हैं। लखनऊ में दारुलसफा के चेहरे पर आज भी कुमुद की छुवन उतनी

ही मादक होकर पड़ी होगी। इतने वर्षों के बाद, सुदूर गाँव में चिलम पीने वालों की आँखे कैसे पढ़ सकती हैं उसका चेहरा, कि कुमुद प्रदेश के बहुचर्चित विधायक एवं भूतपूर्व मंत्री अष्टभुजा की लाडली बेटी मधु शर्मा है !…

वे भी क्या दिन थे, जब बिसेसर के दरवाजे पर अष्टभुजा का मजमा होता था ! यही सलीके। यही उत्सव। सिर्फ शख्सियत का फर्क था।

बिसेसर की रातें भी उन दिनों अकसर दारुलसफा में कटती। मधु, तब जवान हो रही थी। अष्टभुजा जी को राजनीति से ही फुर्सत नहीं थी। उन्हें मिनिस्टर बनना था। घर पर सेवकों और सजदा करने वालों का जमघट लगता था। सेवकों ने सेवा की। सजदे में सर झुकाया। और मधु वक्त से पहले जवान हो गयी। उसकी जवानी का सगीत दारुल-सफा की सीमाओं मे छम-छम ,बजने लगा। दिन के शोर से लेकर रात के सन्नाटे तक में पारखी उस संगीत को बड़ी तन्मयता से सुनते। कर-वटें बदलकर रात गुजारते। जो साहस करते, उसका स्वाद चखते।

और उन साहसी लोगों में एक दुस्साहसी भी निकल आया ! मधु शर्मा—दारुलसफा की चिड़िया, पंख फैलाकर उड़ गयी। अष्टभुजा शर्मा ने सुना तो उनकी आँखें कुछ क्षणों के लिए पथरा गयी। मगर वे नेता थे। उन्हे देश का चरित्र बनाना था। अपने व्यक्तिगत मे उन्हें नही उलझना चाहिए। वे नही उलझे। कानो-कान किसी को खबर तक न होने दी। और प्रचारित कर दिया, कि मधु अपने पैतृक आवास पर, दादी की सेवा के लिए गाँव चली गयी।…

उस चिड़े ने मधु को बहुत उड़ाया, बहुत नीलाम किया। और एक लम्बे अन्तराल बाद वह पिता की देहरी पर लौट आयी। मधु अब पहले से बहुत बदल गयी थी। उसमें यौवन की लाली तो थी। पर यात्राओं की मार ने उसके ऊपर से किसी मिनिस्टर की बेटी होने की पहचान धो दी थी। अष्टभुजा शर्मा इस बार भी अपने व्यक्तिगत से नही उलझे

उन्होंने मधु को स्वीकार नहीं किया।

विकल्पहीनता के उस दौर में बिसेसर कृष्ण की तरह प्रकट हो गये वे मधु को कुमुद की पहचान देकर गाँव ले आये, कि वह उनके दूर के रिश्ते के एक मामा की विधवा बेटी है। और ऐसे मे जबकि वह असहाय स्थिति से गुजर रही है, उसे सहारा देना बिसेसर का परम कर्तव्य है।

बिसेसर ने कुमुद को सहारा दिया था। पर सच तो यह था कि वह स्वयं बिसेसर के लिए एक बहुत बड़ा सहारा थी। बिसेसर के दरवाजे जितने भी हाकिम-हुक्काम आते थे, उन सबको तो वनमुर्गियाँ चाहिए नहीं। कुछ देशी मुर्गियों के भी शौकीन होते हैं।

कुमुद, बिसेसर की ममेरी बहन—एक देशी मुर्गी थी।

□ □

निश्चित समय पर कातिल साहब आये।

उन्होंने गाँव की सीमा में प्रवेश करते ही अवैध कब्जों पर नजर डाली। किसकी झोपड़ी रास्ते पर खड़ी है? किसके बैल चौराहे पर बँधते हैं? किसने अपनी सहन बंजर तक बढ़ा ली?—कातिल साहब ने यह सब डायरी में नोट किया। और बिसेसर के घर पहुँचकर सिपाहियों को आदेश दिया—अमुक-अमुक को हाजिर करो।

कातिल साहब जब भी उस गाँव में आते थे, अपनी ड्यूटी का शुभारम्भ इस पुण्य कार्य से ही करते थे। हर बार यह किस्सा दुहराया जाता था। ढेरों लोग साहब के चरणों में झुक जाते। क्षमा माँगते। और साहब के हाथों में पत्रम्-पुष्पम् अर्पित कर मुक्ति पाते। अपने अवैध कब्जे हटा लेते, इस स्वीकार के साथ कि वे भविष्य मे ऐसी गलती नहीं करेंगे।

मगर साहब के जाते ही बिसेसर घर-घर जाकर अवैध कब्जे चालू करा देते। कहते—कोई खतरा नहीं है। साहब अपने आदमी हैं। अच्छे भले हैं, मगर कलाकार ठहरे। कलाकार मूडी होता है। ऊपर से घुड़-

चढ़ी का शौक। नशे में सब भूल जाते है। लेकिन अब पीने से तौबा कर ली है। फिर कैसा डर ? गाँव तुम्हारा है। इसका उपयोग तुम नही करोगे तो क्या यहाँ हल्दीघाटी का युद्ध होगा ?...

अगली बार कातिल साहब फिर आते। पर कैसा परहेज, कैसी तौबा? वही कलाकार वाला मूड। वही घुड़चढ़ी। वही आदेश कि अमुक-अमुक को हाजिर करो।...अब साहित्य कोई घर की चीज तो है नही। सार्वजनिक काम ठहरा। उसके लिए पैसा कहाँ से आयेगा? इस तरह कातिल साहब का खाता भरा रहता है। साहित्य फलता-फूलता है!...

चन्द क्षणों में लोग जमा हो गये। सिर झुकने लगे। कातिल साहब आपे से बाहर होने लगे। गालियाँ, गोलियों की तरह बरसने लगी, "हरा-मखोरों, हजार बार मना किया, मगर इतना भी इल्म नही है कि...।"

बिसेसर बाबू ने मौका देखा। और एक शेर, जो उन्होने कई दिनों से ऐसे वक्त के लिए बचाकर रखा था, तड से छोड़ दिया। बोले, "शायर साहब, आपने आते ही यह क्या शुरू कर दिया ? शायरों के मुँह से हर वक्त इल्म की बात अच्छी नही लगती। आपने तो वह सुना ही होगा—

इश्क को दिल में जगह दे अकबर
इल्म से शायरी नही आती।"

"वाह-वाह फिर से कहिये।" कातिल साहब झूम उठे। गुस्सा काफ़ूर हो गया। बिसेसर ने कई बार शेर दुहराया। कातिल साहब झूमते रहे। उनके अदबी ज्ञान-भण्डार के लिए यह शेर एक नया माल था। और उस माल के हुस्न से वे चकाचौंध होते रहे।

बिसेसर ने पासा पलटते देखा तो मुड़कर गाँव वालों पर बरस पड़े, "नालायकों, सिर पर सवार हो जाते हो आकर। अभी तो साहब ने आकर साँस भी नही ली।"

"मगर साहब ने बुलाया था।" एक ग्रामीण ने बेचारगी जाहिर की।

बिसेसर जरा मुलायम हुए, "बुलाया है तो शेर-शायरी के लिए बुलाया होगा। नहा-धोकर फुर्सत से आते ?"

"हाँ जल्दी क्या थी ? फ़ुर्सत से आना ।" कातिल साहब चिकने पड़ गये ।

अवैध कब्जे वाले उठने लगे तो बिसेसर ने कहा, "और सुनो, शाम को प्रोग्राम रख लेते हैं । साहब इतने बड़े शायर । हमारा अहोभाग्य है कि आज ये हमारे बीच हैं । हमें इनसे लाभ उठाना चाहिए ।"

"जरूर-जरूर ।" गाँव वालों ने एक स्वर से स्वीकार किया ।

कातिल साहब ने हाथ जोड़ लिये, "सब आप लोगों की कृपा है।"

☐ ☐

शाम की बैठक से पहले बिसेसर ने अर्ज किया, "शायर साहब, आप से एक गुफ्तगू करनी है ।"

"तो करिये न ।"

"आप तो जानते है कि यह गाँव है । औरतें भेड़ों की तरह बच्चे दे रही हैं ।"

"बिसेसर बाबू मत कहिये । भेड़ें बुरा मानेंगी ।"

"तो साहब सोचता हूँ, कुछ ऐसा किया जाय कि ये लोग हर महीने आपके अदबी खाते मे एक निश्चित राशि जमा करते रहें । और रोज-रोज की चिख्-चिख् से जान छूटे । फिर ये जितना चाहें, जगह घेरें। आखिर जमीनें फालतू हैं तो क्या होगी ?"

"मुझे कोई अचार थोड़ी डालना है ।"

"तो एक समिति बना लें, जो हर महीने कम-से-कम दो बार मुशायरा आयोजित करे ।"

"अरे बिसेसर बाबू, कमाल की सोच है आपकी ! यह तो बहुत बड़ा काम होगा ।"

"और उसका नाम 'अदबे कातिल मुशायरा समिति' होगा ।"

"मगर मैं यहाँ आपसे सहमत नही हूँ बिसेसर बाबू । लोग कहेंगे कातिल साहब हर जगह अपने नाम की पूँछ जोड़ देते हैं । आप ग़ालिब या दिलफ़ेक साहब के नाम पर रख लीजिए ।"

"पूँछ कहाँ साहब, हम तो आपको सूँड़ समझते हैं।" बिसेसर को वह कहावत याद आयी कि···मर गये औलाद छोड़ गये। उन्होंने कहा, "आप ग़ालिब से अलग थोड़े ही है। आप तो उनके वंशज हैं। उनकी परम्परा को आगे बढ़ा रहे है।"

कातिल साहब दुविधा मे पड़ गये। बोले, "नही बिसेसर बाबू, ऐसा मत कीजिए।"

बिसेसर ने आँख दिखायी, "सुनिये शायर साहब, हम आप से इस बारे में कोई राय नही लेंगे। यह समिति हमारी है। हम चाहे जिसके नाम पर रखें। आपको एतराज हो तो कोर्ट मे दावा कीजिएगा। हम भी देख लेंगे।"

और कातिल साहब बिना दावा किये ही मुकदमा हार बैठे। बोले, "हीं-हीं-हीं, बिसेसर बाबू आपसे तो खुदा भी नही जीत सकता। हीं-हीं-हीं, फिर मैं किस खेत की मूली हूँ? जो मन में आये, कीजिए, हीं-हीं-हीं।"

☐ ☐

बैठक हुई। बैठक मे वे लोग भी आये, जिनका अवैध कब्जा नही था। पर वैध-अवैध धन्धों से गहरा सम्बन्ध था।···जो कोरे शरीफ थे। पर उन पर कल को कोई विपत्ति आ सकती थी। उनका बेटा अचानक डकैत साबित हो सकता था। वे गुण्डा घोषित हो सकते थे। किसी लड़की की इज्जत लूटने का गुनाह उन पर थोपा जा सकता था। कुछ भी हो सकता था।

और इसके लिए जरूरी था कि वे कातिल साहब की अदब-क्रांति मे हिस्सा बटायें। बिसेसर ने साहित्य पर एक लम्बा भाषण दिया, "···सज्जनों, शायर साहब को साहित्य-सेवा से ही फुर्सत नहीं है। आपके अवैध कब्जे से उन्हे क्या लिना-देना? अफसर आदमी ठहरे, सो कभी-कभी चिड़चिड़ा जाते है। हमें चाहिए कि उन्हें नाराज होने का मौका ही न दें। उनके महान कार्य में रुकावट न बनें। उनकी साहित्य-सेवा को

तौलें। उसमें यथाशक्ति सहयोग दें। बाकी जमीनों का क्या है ! वह आपकी सम्पत्ति है। आप उस पर जैसे चाहें, रहें। जितना चाहें, उपयोग करें।...''

विसेसर अवैध कब्जे और कातिल साहब की साहित्य-सेवा पर इस तरह बोलते रहे, जैसे दोनों मे परस्पर गहरा सम्बन्ध हो। बैठक के पूर्व ही उन्होंने घर-घर जाकर लोगों को समझा दिया था कि वे साहब को नाक की सीध मे चलाने का रास्ता सोच चुके हैं। बस गांव वालों का समर्थन चाहिए।...

लोगों ने जी भर सिर हिलाया कि साहब नीर-क्षीर-विवेकी हैं। उनकी यात्रा में सहयोग देना गाँव वालो का परम कर्तव्य है। बिसेसर ने कहा, ''आप सब मिलकर सोचिये कि हम शायर साहब की अदब-सेवा मे क्या और कैसे सहयोग कर सकते है !''

उसके बाद। बैठक में खामोशी छा गयी। सवाल तो बहुत ऊँचा और सटीक था। मगर यह किसने सोचा था कि वहाँ चलकर उन्हें ही यह समझाना पड़ेगा ? लोग निरुत्तर थे। और ऐसे समय में, जैसा कि होना चाहिए, लोगों ने बिसेसर की ओर दीन भाव से देखा—गरीबपरवर, आप के रहते हुए हम सोचे ? इतना बड़ा सागर हमसे कैसे पार होगा ? आप करुणानिधान है। हम पर दया कीजिए। किनारे लगाइये।

बिसेसर ने अपना 'ब्रह्म ज्ञान' भरी सभा में उछाल दिया। लोगों ने आँखों देखा, कानों सुना। और धन्य हो उठे। 'अदबे कातिल मुशायरा समिति' उनके लिए बहुत बड़ा चमत्कार था। हिन्दुओं के लिए गीता का कर्मयोग था। मुसलमानों के लिए इस्लाम और हरिजनों के लिए रैदास की वाणी थी। वूढ़ों के लिए चारो धाम था तो युवकों के लिए 'सभोग से समाधि' थी।

लोगों ने झूमकर तालियाँ बजायी।

इसके बाद पदाधिकारियों का चुनाव सम्पन्न हुआ। गाँवों मे ऐसी विभूतियों की कमी नही थी, जो देहात मे अपनी जन-सेवाओं के लिए

लोकप्रिय हों। ऐसे में बहुत जरूरी था कि समिति उनके सुयोग्य हाथों में सौंप दी जाय। समिति के पदाधिकारियों का सक्षेप में विवरण इस प्रकार है—

सूबेदार उर्फ जालिम सिंह—कत्ल = आठ, बलात्कार = ग्यारह, अपहरण = असंख्य, शौक = कीर्तन-पूजन, मन्दिर-निर्माण = दो—अध्यक्ष।

पंडित हरिभजन—डकैती = उन्नीस, औरतों की विक्री = तीन गाँव, मुख्य कार्य = समाज-सुधार—मन्त्री।

बाबू लल्लन प्रसाद—गबन = दो, पुलिस छापों से गौरवान्वित = चार बार, चरित्र = प्रमाण पत्रों के अनुसार अति उत्तम—कोषाध्यक्ष।

तूफानी पंछी—राहजनी = अकसर, जेलयात्रा = मात्र सत्तरह बार, विशेष = कातिल साहब की शागिर्दी मे शायरी, सम्प्रति = पशुओ की चोर बाजारी = उप मंत्री।

इस तरह अलग-अलग भूषण-पद्म भूषणों से विभूषित जननायकों ने आयोजन समिति की शोभा बढ़ायी। जो छूट गये उनके लिए 'चाय समिति', 'बिछौना समिति' 'झाड़ू लगाओ समिति' जैसी उप समितियाँ बनायी गयी। और उनमें निदेशक से लेकर अध्यक्ष-उपाध्यक्ष जैसे दर्जनों पद निर्मित कर उन्हें भी इस महाप्रस्थान में शामिल कर लिया गया।

गाँव मे नवयुवकों का एक दल ऐसा भी था, जो इस अभियान को एक खूबसूरत नौटंकी मान रहा था। इस दल के सर्वेसर्वा थे रवीन्द्र शुक्ल। शुक्ल जी अपने दल-बल सहित एक किनारे बैठे चुटकुले लड़ा रहे थे। समिति के चुनाव के बाद उन्होंने खड़े होकर कातिल साहब को बधाई दी, "कमाल है साहब, आपने तो विदेशी ठाकुर को भी मात कर दिया।"

"अरे शुक्ल जी, कातिल साहब को आपने पूरी तरह देखा कहाँ ? देखते चलिए, अभी किस-किस को मात करते हैं!" शुक्ल जी के दल वाले एक नवयुवक ने कहा।

कातिल साहब ने हाथ जोड़ लिये, "ही-ही-ही, मैं तो आपका सेवक हूँ। आप लोगों को दया चाहिए।"

तौलें। उसमें यथाशक्ति सहयोग दें। बाकी जमीनों का क्या है! वह आपकी सम्पत्ति है। आप उस पर जैसे चाहें, रहें। जितना चाहे, उपयोग करें।…"

बिसेसर अवैध कब्जे और कातिल साहब की साहित्य-सेवा पर इस तरह बोलते रहे, जैसे दोनों मे परस्पर गहरा सम्बन्ध हो। बैठक के पूर्व ही उन्होंने घर-घर जाकर लोगों को समझा दिया था कि वे साहब को नाक की सीध मे चलाने का रास्ता सोच चुके हैं। बस गाँव वालों का समर्थन चाहिए।…

लोगों ने जी भर सिर हिलाया कि साहब नीर-क्षीर-विवेकी हैं उनकी यात्रा मे सहयोग देना गाँव वालो का परम कर्तव्य है। बिसेसर ने कहा, "आप सब मिलकर सोचिये कि हम शायर साहब की अदब-सेवा मे क्या और कैसे सहयोग कर सकते है!"

उसके बाद। बैठक में खामोशी छा गयी। सवाल तो बहुत ऊँचा और सटीक था। मगर यह किसने सोचा था कि वहाँ चलकर उन्हे ही यह समझाना पडेगा? लोग निरुत्तर थे। और ऐसे समय मे, जैसा कि होना चाहिए, लोगो ने बिसेसर की ओर दीन भाव से देखा—गरीबपरवर, आप के रहते हुए हम सोचे? इतना बड़ा सागर हमसे कैसे पार होगा? आप करुणानिधान है। हम पर दया कीजिए। किनारे लगाइये।

बिसेसर ने अपना 'ब्रह्म ज्ञान' भरी सभा में उछाल दिया। लोगों ने आँखों देखा, कानों सुना। और धन्य हो उठे। 'अदबे कातिल मुशायरा समिति' उनके लिए बहुत बड़ा चमत्कार था। हिन्दुओ के लिए गीता का कर्मयोग था। मुसलमानों के लिए इस्लाम और हरिजनो के लिए रैदास की वाणी थी। वूढ़ों के लिए चारों धाम या तो युवकों के लिए 'सभोग से समाधि' थी।

लोगों ने झूमकर तालियाँ बजायी।

इसके बाद पदाधिकारियों का चुनाव सम्पन्न हुआ। गाँवों में ऐसी विभूतियों की कमी नही थी, जो देहात मे अपनी जन-सेवाओं के लिए

लोकप्रिय हों। ऐसे में बहुत जरूरी था कि समिति उनके सुयोग्य हाथों में सौंप दी जाय। समिति के पदाधिकारियों का संक्षेप में विवरण इस प्रकार है—

सूबेदार उर्फ जालिम सिंह—कत्ल = आठ, बलात्कार = ग्यारह, अपहरण = असंख्य, शौक = कीर्तन-पूजन, मन्दिर-निर्माण = दो—अध्यक्ष।

पंडित हरिभजन—डकैती = उन्नीस, औरतों की बिक्री = तीन गांव, मुख्य कार्य = समाज-सुधार—मन्त्री।

बाबू लल्लन प्रसाद—गबन = दो, पुलिस छापों से गौरवान्वित = चार बार, चरित्र = प्रमाण पत्रों के अनुसार अति उत्तम—कोषाध्यक्ष।

तूफानी पंछी—राहजनी = अकसर, जेलयात्रा = मात्र सत्तरह बार, विशेष = कातिल साहब की शागिर्दी में शायरी, सम्प्रति = पशुओं की चोर बाजारी = उप मंत्री।

इस तरह अलग-अलग भूषण-पद्म भूषणों से विभूषित जननायकों ने आयोजन समिति की शोभा बढ़ायी। जो छूट गये उनके लिए 'चाय समिति', 'बिछौना समिति' 'झाड़ू लगाओ समिति' जैसी उप समितियाँ बनायी गयी। और उनमें निदेशक से लेकर अध्यक्ष-उपाध्यक्ष जैसे दर्जनों पद निर्मित कर उन्हें भी इस महाप्रस्थान मे शामिल कर लिया गया।

गाँव में नवयुवको का एक दल ऐसा भी था, जो इस अभियान को एक खूबसूरत नौटंकी मान रहा था। इस दल के सर्वेसर्वा थे रवीन्द्र शुक्ल। शुक्ल जी अपने दल-बल सहित एक किनारे बैठे चुटकुले लड़ा रहे थे। समिति के चुनाव के बाद उन्होंने खड़े होकर कातिल साहब को बधाई दी,"कमाल है साहब, आपने तो विदेशी ठाकुर को भी मात कर दिया।"

"अरे शुक्ल जी, कातिल साहब को आपने पूरी तरह देखा कहाँ ? देखते चलिए, अभी किस-किस को मात करते है !" शुक्ल जी के दल वाले एक नवयुवक ने कहा।

कातिल साहब ने हाथ जोड़ लिये, "ही-ही-ही, मैं तो आपका सेवक हूँ। आप लोगों की दया चाहिए।"

पर डंडा पड़ता है, डंडे की ठन-ठन में शायरी है। हर चीज की एक अभिव्यक्ति है। और हर अभिव्यक्ति शायरी है। शायर का काम बस इतना है कि वह इस चूं-चूं और ठन-ठन को कागज के पन्ने पर उतारकर उसे सरस बना देता है। उसे कैद कर लेता है। शाश्वत कर देता है। हमारी शायरी का यह सिद्धान्त है। हम चाहते है कि यह सिद्धान्त देश भर में फैले। जनता और पुलिस के धन्धे में जागृति आये। आपने मुशायरा समिति बनाकर जागरूकता का परिचय दिया है। आज हम आपके आभारी हैं, कल पूरा देश होगा। रही उद्‌घाटन की बात, सो उसके विषय में मेरी राय आप लोगों से थोड़ी हटकर है। मन्त्री और जिलाधीश को मारिये गोली। मुझे आपकी यह बात बहुत पसन्द आयी कि आप अपनी समिति का उद्‌घाटन दीपा बाई से कराना चाहते हैं। मैंने भी उसका नाच बहुत दिनों से नहीं देखा।...

भीड़ ने जोरों से तालियाँ बजायी।

"...मगर आप तो जानते हैं कि सैकड़ों वर्षों से साहित्य में सुरा-सुन्दरी, नेता-जनता, वेश्या को विषय बनाकर बहुत कुछ लिखा गया। हमारा विषय उससे आगे बढ़कर है। वेश्यायें साहित्य की जान जरूर रहीं है। पर उन्हें पालता कौन है ?...भड़वे। हमारे साहित्य ने उन्हें कितना महत्व दिया ? हमारे फनकारों ने हमेशा उनकी उपेक्षा की। मूल की उपेक्षा कर, हम शाख को महत्व देते रहे। उसके बिना माँ भारती का भंडार बहुत सूना है। मगर हम इस काम को अधूरा नहीं छोड़ेंगे। हमारी शायरी का सबसे जीवन्त विषय होगा—आज का भड़वा। भड़वा एक क्रान्तिकारी कदम है। भड़वा जीवन है, सत्य है। भड़वे शाश्वत हैं। वे कल भी थे, आज भी है, और भविष्य में भी रहेंगे।...फिर क्यों न हम अपनी समिति का उद्‌घाटन किसी भड़वे से करायें !...

"तो कातिल साहब, आप से बढ़कर हमें कौन मिलेगा ?" रवीन्द्र शुक्ल ने कहा। पर उनकी बात गाँव वालों की वाह-वाह में डूब गयी। लोग चकित थे। एक तरफ अवैध कब्जा था। दूसरी ओर साहित्य और

भडवा। इन तीनों का एकाकार रूप देना अपने-आप मे एक 'मैजिक' था। और कातिल साहब के आगे पी० सी० सरकार भी खाक थे।

अन्ततः बिसेसर खड़े हुए, "भाइयों, हम तो कुएँ के मेढक ठहरे। हमारा खयाल था कि शायर साहब एक बडे फनकार हैं। पर कितने बडे हैं?—इसका अन्दाज एकाएक कर पाना बहुत मुश्किल है। हम इनके सत्संग से क्षण-क्षण अलौकिकता के दर्शन कर सकते हैं। जो डूबेगा, वही समझेगा। कातिल साहब आप धन्य है। आपकी वाणी सुनकर हम सब धन्य हो उठे।"

कातिल साहब ने अपनी बात आगे बढ़ायी, "...और रहा नाव का सवाल, तो वह भी हम उस भड़वे का ही देखेंगे।"

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कातिल साहब बैठने लगे तो लोगों ने शोर मचाया, "हुजूर, यह तो ज्यादती है। ऐसे नही चलेगा।"

कातिल साहब दीन-ईमान वाले आदमी थे। ज्यादती तो उन्होंने थाने मे आने वाले अपराधियो तक से नही की। उनके चाहे-अनचाहे जी भरकर सुनाया। फिर वे अपने तलबगारो के साथ ज्यादती कैसे करते? खड़े हुए। मगर एक शायर की तरह शरमाकर, घबराकर, वीर रस में आकर। उन्होने फरमाया, "दोस्तों, आज में आपको एक फिलासफी की चीज सुनाता हूँ। बात जरा टेढी है। ध्यान से सुनना।"

"बेशक, बेशक।" भीड़ चिल्लायी।

"...तो नज्म का शीर्षक है—डंडा महान है।"

"वाह-वाह, क्या बात है!" लोगो ने दाद दी।

...कातिल साहब का जनरल नालेज अब काफी बढ़ चला था। पिछले दिनो साहित्य, राजनीति और अच्छन हलवाई की लड़की की जो चर्चायें उन्होने लोगों की जुबान से सुनी थी, वे उर्दू-अदब के लिए बहुत प्रासगिक थी। कातिल साहब ने आव देखा न ताव, तड़ से उसे शायरी के खाते मे डाल दिया।...

नज्म शुरू हुई—

तुम मेरी महबूबा हो । दुनिया से अजूबा हो
तुम्हारे लिए मैंने, कितना जाल बुना । कितनी बार सर धुना
जुम्मन सिपाही को भिजवाया
और जब वह लौटकर आया । तो उसने बताया
कि तुम्हारा बाप नही माना । मै भी दीवाना
बाप को बुलाया । खूब समझाया
जमकर दुत्कारा । पटक-पटककर डंडे से मारा
मगर डंडा बेचारा । उसका क्या दोष
क्योंकि डंडा ब्रह्म है । डंडा योग है
डंडा साकी है । डंडा हाला है
डंडा मयखाना है । डंडा प्याला है ।
डंडा खुमैनी है । जियाउर्रहमान है
हम हैं डंडे से । डंडा हमसे महान है ।

"वाह-वाह, कमाल कर दिया हुजूर, फिर से पढिये ।" जैसे जुमलों की झड़ी लग गयी । कातिल साहब ने कई बार पढ़ा । लोगो ने जी भर सुना । शोर थम गया तो एक लड़के ने छेड़ा, "साहब, आपने तो कबीर से शुरू कर, फहमीदा रियाज तक को छू लिया । क्या कहने !"

कातिल साहब ने उसे ध्यान से देखा । और मुस्कराकर भीड़ से कहा, "पारखी हर जगह होते हैं ।" फिर मुड़कर लड़के की ओर बोले, "होनहार लगते हो । तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल है ।"

लड़का हक्का-बक्का हो गया ।

भीड़ अपने इरादे के साथ उठ गयी । पर हवाओं में कातिल साहब की जय-ध्वनि निरन्तर गूँजती रही ।

□ □

बिसेसर अपनी अपूर्व सफलता से खुश थे, तो कातिल साहब स्वयं की महानता से । और ऐसे मौके पर जरूरी था कि वे जमकर 'सेलीब्रेट' करें । रात, गिलासों की खनक के साथ कजरा उठी । दौर-पर-दौर चलते

रहे। जब वे पूरी तरह् निवट चुके तो वहस में डूब गये।

"शायर साहव, सुना है, आप पर कोई जांच चल रही है?"

"छोड़िये बिसेसर बाबू, यह बताइये कि आज की मेरी नज़्म कैसी रही?"

"कमाल की थी साहब! शकील और मजाज़ भी क्या खाकर ऐसा लिखते।"

कातिल साहब अब पूरी तरह घोड़े पर थे।

"शकील और मजाज़? विसेसर बाबू, हमने तो बड़े-बड़ों को धूल चटा दिया। फिर शकील और मजाज़ की क्या हैसियत हमारे सामने? सच कहा न?"

"सच है शायर साहव, एकदम सच है।"

"विसेसर बाबू, आप मेरी बात माने-न माने, पर मैं तो यही कहूंगा कि बडे-बड़े नामी-गरामी शायरों ने आखिर क्या लिखा? आप ही बताइये, क्या लिखा?"

"कुछ नही साहव, लिखा क्या है?"

"अपना कूड़ा दे गये उर्दू साहित्य को। फैज़ और जोश ही क्या लिखते है? अगर ये लिख रहे होते तो मैं क्यों लिखता?"

"क्यों लिखते शायर साहव, क्यों लिखते?"

"बिसेसर बाबू, इस बात को आप यूँ समझिये कि जैसे किसी थाने में, एक दरोगा रहकर सारे इलाके को कन्ट्रोल कर ले, तो वहाँ दूसरे को जाने की क्या जरूरत? अरे भाई नही कन्ट्रोल कर पाता है, तभी न दूसरे को जाना पडता है वहाँ!"

"सच बात है साहब, सच बात है।"

"और रही फ़िराक की बात, सो वह तो अपने शौक के कारण मशहूर हैं।...बिसेसर बाबू, सोचते हैं हम भी कोई ऐसा ही शौक अपना लें।"

"बिल्कुल अपना लीजिए।"

"मगर हम तो सबसे पहले फ़िराक़ की...।"

"बिल्कुल मारिये शा...।"

अचानक बिसेसर का ध्यान अपने कथन की ओर गया। वे लड़खड़ा उठे। बोले, "शायर साहब, आप नशे में हैं। चलिए आराम कीजिए।"

कातिल साहब ने हँस दिया, "बिसेसर बाबू, यही तो दुनिया है। सच बोलो तो कहेगी—नशे में है।"

बिसेसर ने कातिल साहब की बात अनसुनी कर दी। वे उन्हें सहारा देकर बिस्तर की ओर ले चले। कमरे तक पहुँचाकर बिसेसर बैठक में लौट आये। कातिल साहब लेट गये तो कुमुद ने उठकर दरवाज़ा बन्द कर लिया। रोशनी के एक छोटे-से हिस्से में कातिल साहब ने आँखें मिचमिचायी, "तुम आ गयीं। मगर आज तो मुझे फ़िराक़ चाहिए। सिर्फ़ फ़िराक़।"

कुमुद हैरत से इस नये जीव का नाम सुनती रही।

□ □

सुबह हुई और कातिल साहब थाने के लिए तैयार होने लगे।

चलते समय अचानक उन्हें कुछ याद आया। उन्होंने कहा, "बिसेसर बाबू, जिस काम के लिए आया था, वह तो पड़ा ही रह गया।"

"कौन-सा काम शायर साहब ? हुक्म दीजिए।"

"काम-वाम कुछ नहीं, सुना है आजकल बहुत धान पैदा करने लगे हैं !"

"आपकी दया है साहब।"

"तो क्या करें ? शीत-बसन्त को ले जायें ?"

"जैसा चाहें।"

"जाइये, बुला लाइये।"

शीत-बसन्त। देहात के लिए ये जाने-पहचाने नाम थे। इलाके की छोटी-मोटी चोरियों में अकसर इनका नाम लिया जाता था। जिनमें

होते थे, फँसते थे। जिनमें नही होते थे, उनमें सन्देह के आधार पर जेल जाते थे। और कभी बिसेसर बाबुओ के अपराध उन पर मढ़ दिये जाते थे।

चन्द क्षणो मे वे कातिल साहब के सामने थे। उन्होंने कड़ककर कहा "तुम पर मदन पाडेय की फसल काटने का जुर्म है।"

'यह झूठ है सरकार।" दोनो सकपका गये।

कातिल साहब की बेत उनकी पीठ पर लहरा उठी, सच क्या है, हम उगलवाना जानते हैं!"

कातिल साहब उन दोनों को लेकर थाने चल पडे। जाते-जाते कह गये, "बिसेसर बाबू, मै इन्हे ले जा रहा हूँ। पर मुशायरा समिति की तैयारी अच्छी होनी चाहिए।"

" बिसेसर उस दिन भड़वे की तलाश में शहर निकल गये।

□

घर। मेरा घर। अपनी थकी आँखों से बंजर निहारता। गूँगेपन को आवाज देता। उम्मीदों के आकाश ढोता कि कभी वक्त की तलवार कौंधेगी। और दुश्मन की चीख धरती के ओर-छोर तक गूँज जायेगी। उस दिन के बाद दुनिया का एक अलग नक्शा होगा।

पर कहीं कुछ नहीं होता। नक्शा, आँखों की उम्मीद को चिढ़ाता है। और छप्परों पर पत्थर बरसने लगते हैं। काका घायल पक्षी की तरह देखते रह जाते हैं। शशि बाबू की आवाज दरवाजों पर दस्तक देती है कि ये पत्थर नहीं वक्त के फूल हैं। इन्हें मन की आँखों से पहचानो।

काका ने मन की आँखों से पहचाना कि जाँच कितनी निष्पक्ष हुई है। शशि बाबू गाँव के अड्डों पर बहस करने लगे कि अपराधी सात समन्दर पार हो, पुलिस की आँखों से बच नहीं सकता। कानून के हाथ देखो कितने लम्बे होते हैं!...लोग भाषणों पर सिर हिलाते। उनकी आकृतियों के शब्दों से और भी घना करते। पर लोगों की निजी चहारदीवारी में हँसी के सौ-सौ फव्वारे फूट पड़ते, कि नाटक ऐसे होता है।...

शशि बाबू ने काका को बधाई दी। और मिठाई की माँग की, कि फसल-कांड का रहस्य खुल चुका है। जल्दी ही न्याय उन पर पुष्प-वर्षा करेगा।

काका रात भर तनाव में रहे। करवटों में शशि बाबू का चरित्र पढ़ते रहे, कि वे दूध की तरह उजले और पवित्र हैं। उन पर कालिमा का संदेह नहीं किया जा सकता। पर ऐसा क्यों हुआ ? क्यों हुआ ? अविश्वास की एक गहरी पर्त मन के कोने से उभरती। और शशि बाबू की छवि छूकर हवाओं में गुम हो जाती।

अनिश्चय रात भर चलता रहा।

सुबह शशि बाबू ने जब पिछली बातें, पिछले सन्दर्भ उगलने शुरू किये, तो काका को असह्य हो उठा। उन्होंने साफ कह दिया कि यह जांच नहीं, एक समझदार अफसर की दिमागी हरकत है। कातिल साहब जांच की आड में मुशायरा समिति बनाने गये थे।

शशि बाबू खामोश रह गये। उन्हें लगा कि बात ऐसे नहीं बनेगी। पर उनका क्या ? रास्ते जितने तय करोगे, टूटकर बिखर जाओगे। अन्ततः एक ऐसा बिखराव आयेगा, जहाँ जुड़ाव की सारी संभावनाएँ समाप्त हो जायेंगी। वहाँ पहुँचकर कोई भी सफलतम व्यक्तित्व सिर्फ रो सकता है। अपनी पहचान खो सकता है। आँधियों की जायदाद हो सकता है।

शशि बाबू ने कहा, "पाडेय जी, शायद आप ठीक कह रहे हैं। ये अफसर किसी के नहीं होते। लेकिन आप इरादा मजबूत करें तो ऐसा फन्दा डालूँ कि बिसेसर के साथ कातिल साहब की भी गरदन कस जाये।"

"क्या करेंगे ?" काका रोष में थे।

"आप निराश क्यों होते हैं ? अदालत सामने पड़ी है।"

"देखिये शशि बाबू।" काका का स्वर वैसा ही था, ये अदालतें भी पैसे वालों की गुलाम होती हैं। मैंने जितना किया, उसका परिणाम देख लिया। अब आगे रहने दें। ईश्वर समझेगा।"

"मगर क्यों रहने दें ?" शशि बाबू उत्तेजित थे, इससे दुश्मन को बल मिलेगा। आप कब तक पिसते रहेंगे ?…सुनिये पांडेय जी, आप पैसे की चिन्ता मत कीजिए। जितना मुझसे हो सकेगा, लगाऊँगा। कभी लौटाइयेगा तो ठीक। नहीं तो समझ लूंगा, किसी मन्दिर में चढ़ा आया पुण्य मिलेगा।"

शशि बाबू जोर देते रहे। उन्होंने देहात के कई-कई उदाहरण काका के सामने रखे, कि किस तरह उन्होंने निहत्थों को शस्त्र पकड़ना सिखाया। और आज वे इस हालत में हैं कि विरोधियों से जी खोलकर लोहा ले सकते है। फिर यह तो घर का मामला है। काका को इस तरह हार नही माननी चाहिए।

काका चुपचाप सब सुनते रहे। शशि बाबू उनकी बाहों में शक्ति देते रहे। उन्हें पता था कि तिनके तूफान के साथ सिर्फ उड़ सकते हैं। वे तूफान की आँखो में बाधा नही बन सकते। और ऐसे तिनकों को उड़ते हुए देखना एक खूबसूरत शगल होता है।

शशि बाबू अपने शगल के लिए एक तूफान तैयार कर रहे थे।

उस रात माँ, उन्हें घंटो समझाती रहीं। "यह तुम कैसा व्यूह रच रहे हो ? तुम्हें क्या मिलेगा इससे ?"

और काका तर्क पर पहाड़ उठा रहे थे कि आदमी अन्ततः आदमी ही होता है। कोई भगवान नही होता। उसके चंगुल टूट सकते है। हथेलियाँ मरोड़ी जा सकती हैं। केवल हिम्मत होनी चाहिए।…

सुबह शशि बाबू अपने गुर्गों सहित शहर जा रहे थे। काका साथ थे।

☐ ☐

मुहल्लों के हाथ फिर एक सूत्र आ गया। शाम ढले, जब लोग खेतों से थककर आते, नीम की छाँव मे हुक्के पर देश की व्याख्या नहीं करते। सूखे-बाढ़ की संभावनाओ से परेशान नहीं होते। आकाशवाणी से खबरें नही सुनते। क्योंकि वे बहसों मे व्यस्त थे। और उनका विषय

मदन एक मर्द—आदमी है। बिसेसर की जड़ें हिला देगा। पाँवो पर झुका देगा। थूककर चटवायेगा।…कि कुछ नही होगा। मदन उजड़ जायेगा। मदन की ओर से वकील कालका प्रसाद पैरवी कर रहे हैं। कालका काफी अरसे से बिसेसर के कई मामलों में वकील रहे हैं। मदन को भी क्या सूझी? साँप नाराज हुआ तो सपेरे के घर जा बैठा। सपेरा क्यो बख्शेगा भला?

शशि बाबू की बैठक फिर गुलजार होने लगी।

काका अपने महानगरीय बच्चों की कुशल-क्षेम मना रहे होते। और शशि बाबू कह उठते—पाडेय जी, अब मोहरा सही दाँव पर लगा है। बिसेसर को कालका पर बहुत नाज था, कि वह दुनिया में चाहे जिसका गला घोट दे, कालका उसे फांसी के फन्दे से भी छुड़ा लायेगा। मगर अब कालका बिक चुका है। दुश्मन को हराना हो तो जरूरी है कि रणनीति सीखो। उसके भीतरी पक्ष को कमजर करो। उनमे विभीषण पैदा करो।…

काका इस रणनीति से बहुत आशान्वित थे।

बात अब अदालत के हाथ थी।

सम्मन आते रहे।

सम्मन लौटते रहे।

बिसेसर हर बार घर पर उपस्थित रहे। मगर कागजों पर हर बा उनकी अनुपस्थिति दिखायी गयी। शशि बाबू ने कहा, "पाडेय जी, यह तो भारतीय मुकदमा है। ऐसा ही होता है। इससे जरा खर्च बढ जाता है। पर आपको क्या फर्क पड़ता है? पैसे तो मैं लगा रहा हूँ।"

शशि बाबू का खजाना खुला था। काका को और क्या चाहिए!

अन्ततः अखबार द्वारा सम्मन विज्ञापित हुआ।

और मुकदमा शुरू हो गया।

मुकदमे की पूर्व शाम। काका, शशि बाबू के दल सहित शहर मे थे। पहर रात तक वकील कालका प्रसाद उनसे पूछ-ताछ करते रहे। योजना

बनाते रहे। समझाते रहे कि किस तरह पैंतरे बदले जायेंगे और एक मोड़ के बाद विजयश्री उनके हाथ में होगी।

रात गहराने लगी तो कालका साहब अपने आरामगाह में चले गये। बिसेसर ने कहा, "पाडेय जी, चलो तुम्हें वह चीज दिखाऊँ कि सिर के सफेद बाल एक बार फिर काले हो उठेंगे।"

काका ही-ही हँसते रहे। उन्होने झोले से सत्तू निकाला। और खाकर कालका साहब के जीने के नीचे सो गये। शशि बाबू अपने लोगो सहित जाने कहाँ चले गये! वे रात भर नही लौटे।

सुबह वे कचहरी में थे।

उस दिन कुछ विशेष नही हुआ। पुकार पड़ी और विरोध-पक्ष ने जवाबदेही दाखिल कर दी।···लोग घर लौट आये।

☐ ☐

तारीखें···!

···तारीखें!

और तारीखें···।

अदालत चलती रही। दिन ढलते रहे।···

गाँव की अपनी अदालत में कातिल साहब मुकदमे निवटाते रहे! पिछले एक साल मे उन्होने पचासो मुकदमे निवटाये होंगे। मुकदमा नन्हे मियाँ के कत्ल का रहा हो, सिन्हा साहब के मकान का या गुप्ता जी के चोरी गये हुए माल का। कातिल साहब ने दोनों पक्ष को आमने-सामने कर दिया। फिर शक्ति और सामर्थ्य के गुणनफल से माल-असवाब दोनों पक्षो को बाँट दिया।···

उस रात हवा के होंठ एक अजीब दहशत से काँप रहे थे। पेड़ का एक पत्ता खड़कता और पास बैठी चिड़िया जैसे मौत के पूर्वाभास से चीत्कार कर उठती। लोगों ने कहा—हे राम, किस पर गुजरेगी? इसे उड़ाओ। पत्तियों पर कई पत्थर फेंके गये। हर बार अन्दाज किया गया कि चिड़िया उड़ चुकी है। पर अँधेरे में पत्तों की सरसराहट के सिवा,

कुछ नहीं दिखाई देता था। चिड़िया हर दो मिनट बाद अपना चीत्कार सुना देती। और लोग किसी अनहोनी की आशंका से कांप उठते।

शशि बाबू के दरवाजे पर कातिल साहब की अदालत जमी थी। लोगों ने कहा—कोई असगुन नहीं, यह केवल मन का भ्रम है।

बीच में कातिल साहब न्यायाधीश की मुद्रा में बैठे थे। उनके दोनों ओर दो दल। सामने गाँव वालों का मजमा।

कातिल साहब ने पहले दल की ओर इशारा किया। एक आदमी खड़ा हुआ। कातिल साहब ने पूछा, "तुम्हारा नाम ?"

"जी, मेरा नाम बलदेव है।"

"किस जाति के हो ?"

"पासी।"

"तुम्हें क्या शिकायत है ?"

"जी, खेत मेरा है। खेत के सारे कागजात मेरे पास हैं। पिछले सत्ताइस साल से इसे मैं जोत रहा था।"

"अब ?"

"अब वह जगदीश बाबू के कब्जे में है। पाँच साल हो गये।"

"खेत कितना है ?"

"जी, पाँच बिसवा।"

"तो पाँच बिसवे के लिए तुम अदालत तक गये ? अच्छा होता कि तुम छोड़ देते !"

"माई-बाप, हम क्या खायेंगे ? हमारे पास बस इतनी ही जमीन है।"

"हूँ।" कातिल साहब ने एक गम्भीर हुँकार भरी, जैसे समझौते की जड़ पकड़ ली हो। फिर वे दूसरे दल की ओर मुड़ गये, "जगदीश बाबू आपका क्या कहना है ?"

"साहब, यह जमीन बेशक बलदेवा की है। सत्ताइस साल पहले मेरे बाप ने इसे दी थी। मुझे जरूरत थी, मैंने ले ली।"

"आप जमीन लौटाना चाहेंगे ?"

"साहब, लौटाता तो नहीं। मगर आप जैसा हुक्म दें।"

जगदीश बाबू बैठ गये।

कातिल साहब ने देश की वर्तमान स्थिति और शान्ति व्यवस्था पर अपना चिन्तन प्रकट किया, "दोस्तों, खुदा की बनायी हुई इस दुनिया मे किसी को दूसरे की रोटी छीनने का अधिकार नही है। इतिहास गवाह है कि हमने जब भी आपस में रोटी की खीच-तान की, हिन्दुस्तान को गुलामी के दौर से गुजरना पड़ा। हम तो शायर ठहरे। हमारा सन्देश सिर्फ इतना है कि आप अपनी रोटी चैन से खाओ, दूसरे को भी खाने दो। देश को आजादी दो, ईमान दो। आदमी होकर, आदमी के खून से प्यास मत बुझाओ। भारतीय संस्कृति को डूबने से बचाओ। हमारे ऋषियों ने कहा है—यह सब माया है। माया में मत फँसो। दो टुकड़ा खाकर भगवद्भजन करो।..."

सभा मे जोरो की वाह-वाह हुई। तालियाँ बजीं। नारे लगे।

भारत माता—अमर रहे।

महात्मा गाँधी—जिन्दाबाद।

कातिल साहब—जिन्दाबाद।...

कातिल साहब अब दुगुने उत्साह में थे। उन्होने पहले पक्ष से पूछा, "तो बलदेव जी, आपको मेरा फैसला मान्य होगा?"

"जी सरकार।" बलदेव ने प्रसन्नता से उत्तर दिया। वह कातिल साहब के प्रवचन से बहुत प्रभावित था।

"और जगदीश बाबू आपको?"

"राजा साहब, आप साक्षात देवता है। मुझे क्या एतराज हो सकता है।"

कातिल साहब ने अवसर दिया कि दोनों पक्ष एक मत होकर पंच परमेश्वर चुन ले, जिससे किसी को सन्देह न रह जाय। जगदीश बाबू ने अपने पक्षधरों का नाम लिया। बलदेव ने अपनी बिरादरी से भी कई लोगों को पंच बनाना चाहा। मगर वे जगदीश बाबू द्वारा घोषित पंचों

की कतार में नहीं आना चाहते थे। उन्होंने साफ मना कर दिया। और कहा कि बलदेव कातिल साहब पर भरोसा रखे।

पंच तय हो गये तो कातिल साहब एक वार फिर लोगों की ओर मुखातिब हुए कि किसी को कोई अस्वीकार तो नहीं? अस्वीकार क्या हो सकता था!

कातिल साहब पंचों के साथ वैठक में चले गये। दो-चार मिनट तक उन्होंने पंचों के साथ परामर्श किया और सभा में लौट आये।

कातिल साहब ने कहा, "सज्जनों, जो कुछ तय हुआ है, हमारे पंचों ने किया है। मैं तो सिर्फ आपको सूचना दे रहा हूँ। हमारे पंचो का विचार है कि न्याय किसी एक पक्ष में न हो। आखिर सबके बाल-बच्चे हैं। बलदेव जी भले मानुस हैं। उन्हे, उनकी जमीन मिलनी ही चाहिए। मगर जगदीश बाबू ने भी उस खेत के पीछे अदालत में पैसे बहाये हैं। सो उनका भी कुछ हक होता है। तो पंचों ने यही तय किया है कि दोनों पक्ष को कुछ-कुछ देकर समझौता करा दिया जाय। कैसा रहेगा?"

"बहुत अच्छा रहेगा।" कुछेक लोगों ने समर्थन किया। भीड़ स्तम्भित होकर निर्णय का इन्तजार कर रही थी।

"तो पंचो का यही फैसला है कि दो विसवा जमीन बलदेव को मिलनी चाहिए। और तीन बिसवा जगदीश बाबू लेकर गरीब को जान बख्श दे।"

भीड़ पर सहसा बिजली-सी गिरी। चन्द लोगों ने तालियाँ बजवाने की कोशिश की। बलदेव को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। वह पागल-सा रो उठा, "मैं मर जाऊँगा, माई-बाप। ऐसा न करें।"

कातिल साहब ने बेंत अपनी हथेली पर बजाते हुए कहा, "बलदेव जी, यह पंच परमेश्वर का निर्णय है। आवेश में मत आइये। शांति से सोचियेगा तो सुख मिलेगा। गाँधी जी ने कहा है···

(एकाएक कातिल साहब को याद नहीं आया कि गाँधी जी ने क्या कहा है!)

"'''कि आप कल कचहरी जाकर सुलहनामे की अर्जी दे आइये। और जमीन रजिस्ट्री करने की सोचिये।" इस वाक्य के साथ कातिल साहब अपने दायित्व से मुक्त हो गये। वे देश की आजादी, ईमान और भारतीय संस्कृति की रक्षा कर चुके थे। उन्होंने बलदेव को माया से अलग करने का सन्त-धर्म भी निभा दिया। मगर बलदेव पापी भगवद्-भजन से भागने लगा। गिड़गिड़ाता रहा, "मैं लुट जाऊँगा सरकार।"'''

मगर कातिल साहब की अदालत उठ गयी।

कातिल साहब अब शशि बाबू की आरामगाह में थे। भीड़ अपने घरों पर थी। लोगों ने अपने दरवाजे अच्छी तरह बन्द कर लिये और फुसफुसाहटों में बात चल निकली, कि हाय बलदेव गरीब क्या खायेगा? सरकारी अदालत से तो कुछ उम्मीद भी थी। हे भगवान!

बलदेव अपनी झोपड़ी में बैठा सिसक रहा था। पत्नी हैरान थी। बीमार पिता बिस्तर से उठने की असफल कोशिश में खाँसता, और पूछ उठता, "बलदेवा, तू रो क्यों रहा है? बोल, क्या फैसला हुआ?"'''

उस रात जैसे ही उसे पता चला, बलदेव का पिता बरदाश्त न कर सका। एक क्षण उसके होंठ थरथराये और वह बिस्तर पर [illegible] लुढ़क गया।

दूसरी सुबह वह अर्थी पर श्मशान जा रहा था। और जगदीश बाबू बलदेव को समझा रहे थे कि जैसे भी हो, यह कातिल साहब का निर्णय है। उसे आज ही अदालत में सुलहनामे की अर्जी दे आनी चाहिये।

☐ ☐

काका इन प्रसंगों में आरम्भ से अन्त तक दर्शक की भाँति तटस्थ रहे। उनके पास किस्तों में कई लोग आये, जिन्होंने सुझाव से अधिक दबाव दिया कि वे कातिल साहब की अदालत के निर्णय से [illegible] कर ले। लेकिन शशि बाबू ने कहा, "[illegible] जी, अब तो [illegible] की धार में है। नाविक को तो [illegible]। और कतिलवा भी नम्बरी बेईमान है। [illegible] है"

ने इसकी अम्मा को अपनी एक रात मुफ्त दे दी थी। पर आप चिन्ता मत करो। सब ठीक हो जायेगा।"

कातिल साहब जब भी मिलते, काका को उल्टे सलाम करते। कहते—आप भी गजब की सूझ रहते हो पंडित जी। मैंने तो सोचा, कभी बन्दे को सेवा का मौका दोगे। लेकिन जिसे तलवार चलाने का शौक हो, वह खिलौनों से क्यों खेलेगा, भला? मान गये उस्ताद! सचमुच रुपये का चालीस सेर घी खाया है आपने। हमारे जमाने में तो चालीस रुपये का एक सेर है, सेर भी नहीं किलो।···हम तो 'डालडा मेड' आदमी ठहरे।···

काका चुपचाप सुन लेते। कोई हँसी-खुशी न रोदन। एक आक्रोश था, जो कई दिनों के अन्तराल से फूट पड़ता। काका लोगो के बीच उबल पड़ते। पर जैसे कोई बारिश, दूसरे पल उनकी सारी चीख भिगो देती। एक भूलभुलैया तैयार होती। और काका उसकी पहचान में दिन गुजार देते। जैसे ही उन्हें, उसका व्याकरण समझ में आता, शशि बाबू एक दूसरा चक्र रच चुके होते।

काका तिलस्म से गुजरते रहे।

□

हालात के उस दौर में मौसम बदला । प्रजातन्त्र ने अंगड़ाई ली । और चुनाव की घोषणा हो गयी । भूतपूर्व मन्त्री अष्टभुजा शर्मा को एक बार फिर राजनीति में झंडा गाड़ने का अवसर हाथ आ गया । वे एक बार फिर लखनऊ की हसीन गलियों से निकलकर देहात की धूल-भरी पगडंडियों पर 'गरीबी हटाने' और 'प्रजातंत्र बचाने' के लिए चल पडे ।

गाँव-गली पोस्टरों से भर गये । देश-सेवा के पिछडे आंकडे सुनाये जाने लगे । विरोधियों के हिज्जे होने लगे ।

पर इस बार एक अजीब माहौल देखने में आया । विरोधियों ने अष्टभुजा जी के भाषणों का कोई जवाब नही दिया । वे दूर से मुस्कराते रहे । लेकिन उनका काम हो रहा था । हांलाकि उसके पीछे कोई राजनीतिक योजना नही थी । कोई प्रयास नही था । यह एक सयोग था कि इस बार विरोध करने वाला कोई राजनैतिक व्यक्ति नही था । दलाल नही था । वह जनता का ही एक प्रतिनिधि था—सूरज । सूरज दा ।

दा ने कन्धे पर लाठी सम्हाली । उसके शीर्ष पर पीला कपड़ा बांधा । और इलाके की चौहद्दी में निकल पड़ा । भाषण के एक टुकड़े में अष्टभुजा

जी के राजनैतिक जीवन की सूत्रात्मक व्याख्या करता ।—तो पंचों, जय बोलो बेईमान की । क्योंकि आज देश मे बेईमानों का राज है। और उनमे नम्बरी बेईमान अष्टभुजवा । बेईमान-सरीखा बेईमान होना कोई विशेष बात नही । मगर सारा देहात जानता है कि इसने वर्षों तक इलाके को लूटा । फिर भी जनसेवक की कुर्सी पर बैठा रहा । फिर आ रहा है, आपकी अदालत मे । मेहरबानो, इस बार दूध-का-दूध, पानी-का-पानी होना चाहिए । जय भोले शंकर ।···

सूरज दा झुककर सलाम करता । हाथ को भोपू बनाकर दूर तक अपनी उपस्थिति की सूचना देता । और अपने अभियान की अगली दिशा में चल देता ।

सूरज पूरा क्षेत्र रौंद रहा था । उसके हालात से बच्चे स्तब्ध थे, जवान उत्साहित और बूढ़े आंखो में आंसू भरकर जवाब देते कि इस बार उसे जरूर न्याय मिलेगा ।

सुबह का निकला हुआ वह शाम गुजार देता । बिना खाये-पिये । रात को देर से लौटता । मगर बाद के दिनो में उसे घर लौटते नहीं देखा गया । जहां रात हुई, उसने वही डेरा डाल दिया । और अगली सुबह खुली दिशाओ मे फिर वही गुहार ।

☐ ☐

नही, वह इतना खुखार नही था । मगर सब वक्त का तकाजा था । सूरज दा—यानी एक कुशल अध्यापक, तत्ववेत्ता और जनसेवक । देहात मे उसकी बहुत प्रतिष्ठा थी । किसी को अपने लड़के की पढ़ाई के लिए रुपयों का अभाव है—सूरज दा देगा । अस्पताल मे कोई रोगी खून की कमी से मर रहा है—सूरज दा हाजिर है । कोई सरेआम लुट गया—सूरज उसकी गृहस्थी के लिए बेचैन है ।

और इन कर्मों के पीछे अनगिन चर्चायें कि वह आदमी नहीं देवदूत है । चाहता तो कोठियां खड़ी कर लेता । पर जब देखो, दूसरों के लिए

मर रहा है। घर में खाना नहीं है और वह किसी के कैन्सर का इलाज करवा रहा है।

परिणामतः देहात उसके एक इशारे पर मरने को आतुर था। देहात में उन दिनों भीषण अकाल पड़ा। पशुओं की कौन कहे, आदमी भूख से मरने लगे। सूरज दा रात-दिन कस्बों के चक्कर लगाता। शहर के गली-मुहल्लों से सहायता जुटाता। अष्टभुजा जी उन दिनों विधानसभा में थे। खबर उन तक पहुँचायी गयी। वे आये। उन्होंने देहात का दौरा किया। लोगों की स्थिति पर कांप उठे। उनसे गले मिलकर रोये। और सरकार से शीघ्र सहायता दिलाने का आश्वासन देकर लखनऊ लौट गये।

लोगों को राहत-सी मिली। अष्टभुजा जी जैसे नेता के रहते वे भूख से नहीं मर सकते। उनकी बात सरकार तक पहुँचेगी।

विधानसभा मे अकालग्रस्त क्षेत्रों को लेकर खूब बहस हुई। अखबारों मे खबर आयी कि अष्टभुजा जी ने अपने क्षेत्र को बहुत सुखी और सम्पन्न बताया। उनका कहना था कि अकाल की मार से उनका इलाका बिल्कुल बरी है। वे पिछले दिनों अपने दौरे मे आँखो देख आये है। इस बात के विरोध में एक दूसरे क्षेत्रीय विधायक मुक्तिनाथ से उनकी झड़प हो गयी। मुक्तिनाथ बार-बार देहात की भूखी जनता का सवाल उठाते रहे। लेकिन अष्टभुजा जी की ही बात सर्वोपरि रही। सरकार ने उस क्षेत्र को अकाल से बरी घोषित कर दिया।

इधर लोग प्रतीक्षित थे कि अष्टभुजा जी उनके लिए सरकार से फरियाद कर रहे होंगे। वे शीघ्र ही सुविधा से अपना भोजन जुटा सकेंगे।

किन्तु एक शाम शहर से अखबार आया तो गाँव में खलबली मच गयी। सूरज दा दंग रह गया। उसने गाँव के लोगों से परामर्श किया। तय हुआ कि वह गाँव के दस-पाँच लोगों के साथ लखनऊ जाकर स्वयं नेता जी से बात कर आये। अगली सुबह उन्होंने गाड़ी पकड़ ली और प्रदेश की राजधानी की ओर चल पड़े। उनका विश्वास था कि खबर बिल्

गलत है। अष्टभुजा जी ऐसा नहीं कर सकते।

□ □

वह उल्टी हवाओं का मौसम था। और ऐसे में सूरज दा का साथ देना—कोई पशु भी होता तो एहसान मानता। फिर अष्टभुजा जी तो आदमी ही ठहरे। सूरज दा की स्मृति में एक-एक क्षण अब भी ताजा है। साल भर पहले की तो बात है। गाँव-गाँव दौड़ती थीं जीपें। फड़फड़ाते थे झण्डे और पोस्टर। गली-गली आवाजें, गली-गली शोर। विरोधी हाथ जोड़े घूम रहे थे। सबकी अपनी-अपनी स्थितियाँ थीं। लेकिन अष्टभुजा जी का कहीं, कोई पता नहीं। कभी-कभी रात के उनींदे माहौल में गाँव की सीमाओं से गुजरती हुई जीप इक्का-दुक्का आवाजें छोड़ जाती—लोकतन्त्र की सार्थकता के लिए शीर्षस्थ नेता माननीय अष्टभुजा जी को विजयी बनायें।

हालाँकि अष्टभुजा जी का नाम उस इलाके के लिए नया नहीं था। आजादी मिलने के बाद देश में जबसे सरकार बनी, तबसे अब तक वे अखण्ड विजेता के रूप में इलाके में लोकप्रिय थे। लेकिन इस बार ऐसी हवा चली कि हर कहीं उनके हालात बदतर थे। वे अनेक विशेषणों से भरपूर घोषित हो गये। गली-गली में उनके नाम पर थू-थू मचती। चारों तरफ उनके गुण्डा, तस्कर, डकैत और अवसरवादी होने की चर्चायें थीं। उनकी अय्याशी को उस क्षेत्र के पिछड़ेपन का एकमात्र कारण बताया जाता था। शुरू में तो यत्र-तत्र उनकी कुछ सभायें हुईं। पर उन सभाओं में जनता का रोष वृहद से वृहदतर होता गया। जैसे ही अष्टभुजा जी सभा-स्थल पर पहुँचते, उनकी जीप पर पत्थर बरसने लगते। पुतले जलाये जाते। और 'जनता के दुश्मन—वापस जाओ' जैसे नारों से देहात गूंज जाता है। हर कहीं वही दंगाई माहौल। परिणामस्वरूप अष्टभुजा जी क्षेत्र से गायब हो गये।

और सूरज दा के गाँव के तो क्या कहने! गाँव का एक पीला पत्ता तक वैरागी जी को समर्थन दे रहा था। और इस देखा-देखी पूरे इलाके

ने वैरागी जी को सिर पर उठा लिया। जबकि वैरागी जी इन मामलों मे वैरागी कतई नही थे। हाँ अष्टभुजा जी से वे कुछ दबकर थे। नागनाथ और साँपनाथ का अन्तर नही था। इसके अलावा अन्य पार्टियाँ भी मैदान में थी। बस, गुमशुदा थे तो केवल अष्टभुजा जी।

पर कमाल है उस घटना का।

उस रात हवा के जहरीले दाँत अपेक्षाकृत अधिक आक्रामक थे। बादलों की गर्जन और ओलों की बारिश से छप्पर कराह उठते थे। शाम होते ही बच्चे-बूढ़े अलाव से उठकर अपने लिहाफों में दुबक गये। आधी रात का वक्त रहा होगा, कि अँधेरे के विशाल साम्राज्य को लाँघता हुआ हरगुना आया और यह सूचना दे गया कि अष्टभुजा जी की जीप सिवान के दलदल में फँस गयी है। लगभग दो घन्टे से परेशान है।

"तब ?" सूरज दा ने सिर के ऊपर से लिहाफ खीच लिया।

"आप जैसा कहे !" हरगुना वैसे ही खड़ा था।

सूरज दा ने अपनी बाँहों पर एक पहाड़-सा महसूस किया। पल भर तो उसने सोचा कि इतनी रात को कौन जाय ? पर एकाएक उसके भीतर यह विचार कौंध गया कि आखिर वह भी तो एक जीव है। नही, आलस्य ठीक नही। उसने एक मिनट में निर्णय लिया और उठकर लाल-टेन जलाने के लिए माचिस ढूंढने लगा। भीतर के कमरे से बड़े भैया ने आवाज दी, "जा रहे हो क्या ?"

"हाँ, सोच तो रहा हूँ कि हो आऊँ।"

सूरज दा ठिठक गया। अब बड़े भैया ने टोक दिया तो उनका आदेश लेना ही पड़ेगा।

भैया बोले, "इतनी ठंड मे मरने जा रहे हो, वह भी अष्टभुजवा के लिए ?"

"सो तो ठीक है भैया। लेकिन यह गाँव की इज्जत का सवाल है। हमारे सिवान में आकर कोई अचानक मरने लगे और हम आँखों पट्टियाँ बाँध ले, यह कैसे होगा ?"

सूरज दा के तर्क से बड़े भैया भी उठ आये। जल्दी से पड़ोस के दस-पाँच लोगों को जगाया। पहुँच गये सिवान के बीच। सभी कछाँड़ मारकर दलदल मे उतर गये। और 'काली मैया की जय' बोलकर जीप किनारे कर दी।

उसके बाप अष्टभुजा जी का वह पिघला हुआ चेहरा—सूरज दा को वैसा ही याद है। हाथ जोड़कर खड़े थे। कृतज्ञता आँखों से उमड़ी जा रही थी। पर होंठ थे कि फड़ककर रह जाते थे। बोल ही नही फूट रहे थे। अन्ततः इतना ही कह पाये, "अब आज्ञा दीजिए सूरज जी!"

"पर इतनी रात को कहाँ जायेंगे?"

"आप परेशान न हों। इतना ही नही चुका पाऊँगा।"

"मगर यह मुझसे न होगा।"

सूरज दा जिद पर अड़ गया। और उसे स्वीकारने के अतिरिक्त अष्टभुजा जी के पास कोई रास्ता नही था। जीप मोड़कर दरवाजे लायी गयी। बैठक मे अष्टभुजा जी के सोने का इन्तज़ाम किया गया। अन्ततः रात का गाढ़ापन महसूसते हुए लोग अपने बिस्तरों पर चले गये।

सूरज दा की नीद एक बार उचट गयी, सो उचट गयी। फिर तो शुकवा उगने का इन्तजार और उसके बाद खेत तक की यात्रा उसकी दिनचर्या में शुमार थी। मगर चुनावी माहौल में इतने श्रम के बावजूद अष्टभुजा जी बिस्तर पर लगातार करवटें बदलते रहे, यह सूरज दा की आँखों मे गहरे तक उतर गया।

अचानक पेड़ पर किसी परिन्दे ने पंख फड़फड़ाये। दा ने करवट बदलकर देखा, अष्टभुजा जी बिस्तर पर बैठे थे।

"क्या बात है, खटमल काट रहे हैं?"

"नही।" अष्टभुजा जी का संक्षिप्त उत्तर।

"चुनाव इस बार कैसा चल रहा है?" उसने कुरेद दिया।

और अष्टभुजा जी उठकर उसके पायताने आ गये। हाथ पकड़कर रो पड़े, "मैं डूब रहा हूँ सूरज जी, मुझे उबार लीजिए।"

सूरज दा को इस स्थिति की कल्पना नहीं थी। इतना बड़ा नेता और उसके आगे इस तरह गिड़गिड़ाये। कोई सुनेगा तो क्या कहेगा? उसने घबराकर आस-पास देखा। वही, अँधेरे का विशाल समुद्र।

"मगर मैं अकेले क्या कर सकता हूँ?"

"आप सब कुछ कर सकते हैं सूरज जी, सब कुछ। आखिर गलती सबसे होती है। लेकिन मैंने ऐसी कौन-सी गलती की, कि आप लोगों ने मुझे इतना पराया समझ लिया?"

सूरज दा भौचक्के यह सब सुनता रहा। उसने अपनी याददाश्त पिछले दिनों की ओर दौड़ाई। कहीं कोई ठोस सुबूत तो नहीं था। कम-से-कम उसकी दृष्टि में तो कोई अहित अष्टभुजा जी ने कभी नहीं किया। बाकी आम मामलों में जो घोटाला सुनने में आया, सब अफवाहें हैं। विरोधी जो न करायें।...सूरज दा पसीज उठा। बोला, "इस वक्त तो आप आराम कीजिए। सुबह होने दीजिए। मुझसे जो बन पड़ेगा, करूँगा।"

सुबह मन्दिर में घन्टा बजने से पूर्व घर-घर खबर पहुँचा दी गयी कि आज दिन में आठ बजे सूरज दा के दरवाजे पर अष्टभुजा जी का भाषण होगा।

वक्त हो गया लेकिन कोई नहीं आया। सिवा आठ-दस लोगों के। फिर साढ़े आठ बज गये। फिर नौ। लेकिन वही उपस्थिति। अन्ततः अष्टभुजा जी ने बोलना शुरू किया। लोग अपने-अपने दरवाजे से टोह ले रहे थे। और जो एक-एक कर आना शुरू हुए तो पूरा गाँव एकत्र हो गया।

उस दिन के भाषण के क्या कहने! अष्टभुजा जी की जिह्वा पर तो सरस्वती विराजती है। लोग मन्त्र-मुग्ध होकर सुन रहे थे। उन्होंने आँकड़ों की झड़ी लगा दी, कि आजादी मिलने से लेकर अब तक निर्माण के लिए उन्हें कितना खून-पसीना एक करना पड़ा। उन

में पूरा देश है। जबकि विरोधी हमेशा क्षेत्र का सवाल खड़ा कर देते हैं, कि उन्होंने इस क्षेत्र के लिए क्या किया ? इतना तुच्छ सवाल। लोकतन्त्र तभी मजबूत हो सकता है, जब हम क्षेत्रवाद से हटकर सम्पूर्ण देश के धरातल पर सोचेंगे।···

एकाएक अष्टभुजा जी की हिचकियाँ बँध गयी। आँखों से आँसू उमड़ पड़े। बोले, "यह आर्यों की पवित्र भूमि आज किस हद तक पतन के गर्त में जा चुकी है ! और हमारे नेतागण कुर्सी की लड़ाई में अपने श्रम का दुरुपयोग कर रहे हैं। हमे चाहिये कि चुनाव को एक रस्म की तरह निबटा दे। और अपना सारा श्रम देश के विकास में लगायें।"···

अष्टभुजा जी के इस पवित्र भाषण से लोगो की आँखें भर आयीं। सबने एक स्वर से कहा कि उन्हे भारत माँ के ऐसे लाल पर नाज है।

फिर तो रुपये और अनाज की शक्ल मे घर-घर से चन्दे आये। उस दिन कोई भी खेत मे काम पर नही गया। लड़के कॉलेज नही गये। और नाद पर बँधे हुए बैल बिना खाये पड़े रहे। दोपहर उतर आयी तो अष्टभुजा जी भोजन पर चले गये। फिर एक-से-एक बढ़िया रिकार्ड बजे। और वह रिकार्ड सुनकर तो गाँव के बूढ़े भी एक बार अपनी उम्र भूल बैठे—नथनियाँ ने हाय राम···।

शाम तक गाँव मे एक कोठरी खाली की गयी। और उस पर झंडा लगाकर उसे प्रचार-कार्यालय घोषित कर दिया गया। अगली सुबह से प्रचार जोरों पर होने लगा। सूरज दा गाँव-गाँव जाता। बड़े-बूढ़ों को समझाता। अष्टभुजा जी का भाषण करवाता। विरोधी दंगाइयों के लिए कुछ मुस्तंडों की व्यवस्था करता। गयी रात तक घर लौटता। और अगली सुबह तड़के प्रचार-कार्यालय पहुँच जाता। इस तरह दसेक दिनों के भीतर माहौल बदल गया। और देहात की अधिकांश जनता की ज़ुबान पर अष्टभुजा जी छा गये। बाद में गाँव-गाँव उनके प्रचार-कार्यालय खुल गये।

सिलसिला चल निकला तो प्रचार का आगामी कार्य देहात के नवयुवकों ने सम्हाल लिया। और अष्टभुजा जी के अनुरोध पर सूरज दा

अवकाश पा गया। तो भी उसकी सुबह-शामें प्रचार-कार्यालय पर ही गुजरती थीं। प्रचार की सारी गतिविधियों की वह पूरी छान-बीन करता और अधिक से अधिक इस महायज्ञ में हाथ बँटाने की कोशिश करता। हालांकि अष्टभुजा जी ने स्पष्ट कह दिया था, "अब आपका आशीर्वाद भर चाहिए। इतने सारे लोग तो हैं ही।"

अन्ततः लाल-पीले अनुभवों से गुजरकर मतदान का दिन आया।

मतदान केन्द्रों पर अद्भुत उत्सव था। घर-घर वैरागी जी की जीपें दौड़ रही थीं। लोग बारातियों की तरह आव-भगत के साथ केन्द्रों पर पहुँचाये जा रहे थे। वैरागी जी के तम्बुओं में गोश्त पक रहे थे। शराब की टंकियाँ खुली थीं। कोई रोक-टोक नहीं। जो जितना चाहे, उड़ाये-पचाये। एक मेला-सा लगा था। दूसरी ओर अष्टभुजा जी के तम्बू लगभग वीरान थे। सारे कार्यकर्ता हतोत्साहित। लेकिन सूरज दा के चेहरे पर वैसी ही चमक थी। वह हर मतदाता को समझा आता, "प्यारे, माल-मुद्दा जहाँ भी मिले, मत चूको। लेकिन अष्टभुजा जी को मत भूलना।"

दोपहर ढलते-ढलते यह बात वैरागी जी तक पहुँच गयी कि सारे वोट अष्टभुजा जी के नाम 'पोल' हो रहे हैं। फिर तो उसके गुण्डों ने अष्टभुजा जी के एक कार्यकर्ता को बहाना ढूँढकर पीटा। इधर के सारे लोग बौखला गये। पर सूरज दा ने सबको रोका। उसका कहना था कि यह चुनाव-डिस्टर्ब करने का तरीका है। अभी नहीं। इसका हिसाब बाद में करेंगे। उसने चुपचाप घायल को अस्पताल भिजवा दिया।

और मतगणना के दिन तो वैरागी जी पूरी तरह गुण्डई पर उतर आये। जैसे ही पता चला कि अष्टभुजा जी एक लाख से आगे हैं, उन्होंने बैलेट-बॉक्स लूटने की योजना बना ली। लेकिन सूरज दा के आदमी भी कोई कम नहीं थे। उस पर देहात के कई-कई प्रतिष्ठित लोग। तय हुआ कि अगर कुछ हुआ तो यहीं से वैरागी जी की लाश जायेगी।

रात के दो बजे तक लोग कचहरी-कम्पाउंड में ठंड से ठिठुरते

अन्ततः परिणाम आया कि अष्टभुजा जी अपने निकटतम प्रतिद्वन्द्वी घी वैरागी जी को दो लाख, चौदह हजार मतों से पराजित कर विजयी हुए। जो जहाँ था, वही से दौड़ा। अष्टभुजा जी मालाओं से लद गये। एक लम्बा जुलूस सुबह तक शहर की सड़कों पर उनका जयघोष करता रहा। और सूरज दा के उत्साह के क्या कहने ! लेकिन उसे इस बात से बहुत दुख हुआ कि जुलूस का नेतृत्व ऐसे कई लोग कर रहे थे, जो इलाके में अपने कारनामों के लिए कुख्यात थे। सुनने मे तो यह भी आया कि उन्होंने इस चुनाव में अष्टभुजा जी के नाम पर पानी की तरह रुपये बहाये। पर अष्टभुजा जी को देखते हुए सूरज दा को यकीन नहीं हुआ।

वह दूसरे दिन गाँव लौटा। इस जीत की खुशी में कीर्तन कराया। उसकी बहुत इच्छा थी कि ऐसे शुभ अवसर पर अष्टभुजा जी अवश्य उपस्थित हों। पर अष्टभुजा जी ने कहा कि उन्हें उसी सुबह लखनऊ जाना है, पार्टी के कई अंतरंग मामलो पर विचार करने। वे नहीं आ सकेंगे।

बाद मे बड़े भैया शहर से लौटे तो बताया कि अगले तीन दिनों तक अष्टभुजा जी शहर में ही थे। उनकी सफलता के उपलक्ष में कई-कई पार्टियाँ हुईं। परमेश्वर जी के यहाँ तो बहुत कुछ हुआ, जिसे सुनकर सूरज दा ने कानों पर हाथ रख लिया। राम-राम। बड़े भैया भी नम्बरी गप्पी है। तिल का ताड़ करने वाले। कही कुछ सुन लिया होगा, उल्टा-सीधा। और लेकर उड़ पड़े।

फिलहाल जो आँखों से न गुजरे, उस पर कान देने से क्या फायदा? सूरज दा की आँखों मे तो केवल वे क्षण थे, जब अष्टभुजा जी ने कीर्तन में उपस्थित न हो पाने के लिए क्षमा माँगते हुए निर्माण-सम्बन्धी उन सारी योजनाओ को दुहराया था, जिनके बल पर वे इलाके को शहर की सिविल वस्ती जैसा बनाना चाहते हैं। चलते-चलते उसने ठिठोली की थी, "लखनऊ जाकर हमें भूलियेगा तो नहीं ?" अष्टभुजा जी यह सुनकर लाज से गड़ गये। बोले, "हम तो आपके सेवक हैं। कभी ऐसी गलती

हो जाय तो डंडा फटकारते हुए आइयेगा, बुरा नहीं मानेंगे।" और ठहाकों के साथ विदा लेकर सूरज दा गाँव लौटा था।

वे दिन क्या अष्टभुजा जी कभी भूल पायेंगे ?

□ □

और ऐसे में यह खबर ? नहीं, अष्टभुजा जी यह कतई नहीं कर सकते। उपकार की एक लम्बी गाथा लिये हुए वे लखनऊ स्टेशन पर उतरे। और रिक्शा पकड़कर अपने गन्तव्य की ओर चल पड़े।

सूरज दा ने उम्र के बावन वसंत देखे थे। हरे-हरे पत्तों वाले—जादुई और खुशबूदार। और कभी बिल्कुल पीले—दमे के रोगी की तरह खाँसते हुए अन्तिम साँस तक जीने की इच्छा बनाये रखने वाले। एक-से-एक देस-दुनिया की सैर की थी। किन्तु लखनऊ उसे हमेशा एक माया-नगर जैसा लगा। उसने सुना भी था कि बड़े-बड़े जाकर भरम जाते हैं वहाँ। विशेषकर हमारे नेतागण। इसलिए जब भी वह लखनऊ आया—अमीनाबाद से लेकर हजरतगंज तक के नखरे और खुमार देखे। शहर के कई हिस्सों में चक्कर लगाया। हर कहीं एक उधार चमक शहर का चेहरा डुबोये हुए थी। यह चमक कहाँ से आयी होगी, पता नहीं !

उसने किताबों मे पढा था, भाषणों में सुना था, और लोगों को बताया था कि इस देश की आत्मा गाँवों मे निवास करती है। और उस आत्मा को उसने गाँवों की दैन्यता में जिस तरह सिसकते हुए देखा था, उससे इस चमक का कोई रिश्ता नहीं जोड़ पा रहा था। ऐसी रंगीनियाँ भला किस काम की ?

"धन्य हो अलकापुरी !" सूरज दा ने झुककर शहर को प्रणाम किया। और इस शब्द के खोखलेपन पर ठठाकर हँस पड़ा। बोला, "यह इस युग का मुहावरा है।"

□ □

अष्टभुजा जी के निवास पर काफी भीड़ थी। बरामदे में पड़ी बेंचों पर बैठे लोग तन्मयता से उनके बाहर आने का इन्तजार कर रहे

जो सुबह से आये थे, उनमें से कुछ लोग सामने कैफे की ओर आ-जा रहे थे। कुछ मुर्ती ठोंककर मन को तसल्ली दे रहे थे। एक बूढ़ा स्वतन्त्रता-संग्राम-सेनानी अपनी लकड़ी की टाँग से घिसटकर दरवाजे की ओर जाता और हर बार सेक्रेटरी उसे आश्वासन देकर लौटा देता। वह बुझा हुआ, वापस बेंच पर आ जाता। और थोड़ी देर बाद फिर उछाल मारता। बगल में बैठे एक सज्जन लगातार बड़बड़ाये जा रहे थे, "कमाल है साहब। इतना भी मैनर नहीं है कि कम-से-कम इस अपाहिज के दो शब्द तो सुन लेते !"

इस बीच खादी में सजे हुए कुछ लोग लगातार बाहर-भीतर हो रहे थे। उनके लिए कोई रोक-टोक नहीं। बाकी लोगों के लिए दरवाजे पर एक कुत्ता था, जो गुर्राकर बताता था कि नेताजी से मिलने के लिए रजिस्टर में नाम लिखो और बैठकर प्रतीक्षित हो जाओ।

सूरज दा ने यह काम पहले ही निवटा दिया था। और उस शुभ घड़ी के इन्तजार में कई-कई बीड़ियाँ फूंक चुका था। साथ के लोग तो पड़े-पड़े वहीं सो गये। इस बीच कई-कई कारें आयीं, लड़कियाँ आयीं, टोपियाँ आयीं, गजे भी। सबने अपने-अपने गुबार छोड़े और लौट गये।

हे राम ! सारी बीड़ियाँ खत्म हो गयीं। उफ।

लान में झूमते खजूर-वृक्ष अपनी दिनचर्या पूरी कर खामोश हो गये। सड़कों पर लू ने नाखून मारना बन्द कर दिया। और सूर्य उस दिन की आखिरी हँसी हँसने लगा। अधिकतर मिलने वाले हारकर लौट गये। दो-चार ही बचे थे। वह अपाहिज अब भी हर दो मिनट बाद दरवाजे तक घिसट आता था। भीतर के कहकहों और ठहाकों से लगता था, कोई विशेष महफिल अपनी जवानी पर है।

तभी कमरे से बाहर निकलकर सेक्रेटरी ने हाथ जोड़ते हुए कहा, "माफ कीजिए, कल आप लोगों को फिर कष्ट करना पड़ेगा। विधायक जी को अचानक फीवर हो गया। बहुत परेशान हैं।"...और इसके पहले

कि लोगों के चेहरों पर कोई श्मशान उगे, दरवाजा 'खट' की आवाज के साथ बन्द हो गया।

लोग अपनी-अपनी शब्द-सीमाओं में नेता जी को 'आशीषते' हुए चले गये। वह अपाहिज सन्त भाव से खामोश, उछलता हुआ गेट पार कर गया।

"*अब क्या करें?*" साथ के लोग निराश हो गये।

सूरज दा ने कहा, "अच्छा हुआ, भीड़ छँट गयी। अब काम बन जायेगा।" सूरज ने दरवाजा खटखटा दिया।

सहसा सेक्रेटरी अपनी गुर्राहट के साथ प्रगट हुआ, "क्या बात है?"

"बात यह है कि हमें एक बहुत जरूरी काम के लिए विधायक जी से मिलना है।"

"आप कल सुबह आइये।"

"पर हमें तो आज ही लौट जाना है।"

"तो लौट जाइये।"

"अरे भई, हम उनके क्षेत्र से आये है।"

"यहाँ हर कोई लन्दन से ही आता है।"

सूरज दा बेचारगी से घिर गया, "आप तो बे-मतलब नाराज हो रहे हो।"

"तो क्या खुश हो जाऊँ? तुम्हे तमीज ही नही है बात करने की।"

"गाली मत दो। हम अष्टभुजा जी के आदमी है।" सूरज दा ने सोचा कि इस परिचय से वह घबरा उठेगा।

लेकिन वह पहले से और तेज चीख उठा, "बड़े आये अष्टभुजा जी के बाप बनकर।" और पहले से अधिक तेजी के साथ दरवाजा बन्द हो गया।

सूरज दा का चेहरा एक लौ की गिरफ्त में झुलस गया। भीतर का

तूफान उसे किसी महाशक्ति को चिथड़े-चिथड़े कर देने को प्रेरित कर रहा था। मगर इस उम्मीद में कि शायद बात बन जाये, वह यह सब मीठे पेय की तरह पी गया।

लौटते समय उनके पाँव पत्थरों से बँधे थे। सब चुप थे। सुबह से बिना खाया-पीया शरीर। उस पर इतनी यात्रायें। मन बहुत बोझिल था। पास से गुजरती गाड़ियों के हार्न तक अकसर सुनाई नहीं पड़ते थे। अन्ततः चुप्पी को तोड़ने के लिए उन्होंने प्रकृति को विषय बनाया। और मौसम की समीक्षा करते हुए होटल पहुँच गये।

□ □

सुबह; आठ बजे वे फिर दारुलसफा में थे। पता चला अष्टभुजा जी अभी सो रहे हैं।

"फिलहाल जागते ही उन्हें मेरा नाम बता देना।"

सेक्रेटरी सिर हिलाकर भीतर चला गया। सूरज दा उसकी आज्ञाकारिता पर, एड़ी से चोटी तक हरा हो गया। पिछली रात वह सेक्रेटरी के व्यवहार को लेकर काफी उलझा रहा। मन था कि वह अष्ट-भुजा जी से पहला सवाल यही करेगा कि उन्होंने किस गधे को सिर पर बिठा रखा है?

पर सुबह पहुँचने पर उसका सिर हिलाना सूरज दा के भीतर क्षमा-शीलता पैदा कर गया। नहीं, उसे शिकायत नहीं करनी चाहिए। बेचारे की रोजी-रोटी है। और फिर इतने सारे मिलने वाले आते हैं। खीझ स्वाभाविक है।

साथ के लोगों ने तो फुसफुसाना भी शुरू कर दिया कि उनके जाने के बाद जैसे ही अष्टभुजा जी को पता चला होगा, उन्होंने सेक्रेटरी को डाँटा होगा। हिदायत दी होगी कि उनके साथ कैसे व्यवहार करना है! जरूर ऐसा हुआ होगा। वरन् यह मुँहलगा कुत्ता, ऐसे दुम नहीं हिलाता।

"सुनिये, आपने क्या नाम बताया?" सेक्रेटरी सामने था।

"सूरज चौधरी।"

"चलिये, विधायक जी बुला रहे हैं।"

अन्दर दाखिल हुए तो अष्टभुजा जी सोफे से उठ खड़े हुए। उन्होंने एक-एक को बाँहों में भर लिया। इलाके के लोगों का हाल पूछा। अकाल पर चिन्ता व्यक्त की। देहात को विकसित करने की योजनायें बतायी। मौका पाते ही सूरज दा विषय पर आ गया, "शर्मा जी, आजकल अखबारों का कोई भरोसा नहीं। आपके बारे मे पता नहीं, क्या-क्या छाप दिया!"

"अरे आप उस प्रकरण को लेकर बात कर रहे है! वह तो मुक्तिनाथ की साजिश है।"

"यही तो, मैं भी कहूँ कि आप भला ऐसा क्यो करेगे?" सूरज दा खिल उठा। साथ के लोग भी उसकी 'हाँ' मे 'हाँ' मिलाने लगे।

"लेकिन अखबार वालों को यह क्या हो गया है?"

"सब पैसे का खेल है सूरज जी। पैसे पर क्या नही होता!"

"आप उन पर दावा क्यों नही करते?"

"क्या-क्या करें हम? हमें तो आप लोगो के लिए मरने से ही फुर्सत नही।" अष्टभुजा जी हँस पड़े। उन्होने सामने दीवार पर टँगा हुआ नक्शा उतारा और दिखाने लगे कि देश का कौन-कौन सा हिस्सा अकाल की चपेट में है! और उन सबके लिए उन्हे लड़ना है। फिर यह तो अपने क्षेत्र की बात है। इसके लिए तो वे अपनी जान भी लगा देंगे।

अष्टभुजा जी उनसे घण्टों बात करते रहे। उन्होंने बताया कि वे आज बहुत व्यस्त थे। उन्हे अंगूरिया जी की नयी कम्पनी का उद्घाटन करने जाना था।...पार्टी की कान्फिडेंशियल मीटिंग मे भाग लेना था।... नवयुवकों के एक संगठन को सम्बोधित करना था। मगर अब वे नही जायेंगे। आज अकाल की समस्या पर सोचेंगे। उन्हे जल्दी ही कोई हल निकालना है।

□ □

राजधानी से लौटकर वे बहुत खुश थे।

उनके होठो पर अष्टभुजा जी का नूतन यशगान था।
अखबारो के प्रति घृणा थी।
मुक्तिनाथ के प्रति क्षोभ था।
सरकार की ओर याचक दृष्टि थी।

वक्त गुजरता रहा। वे बार-बार लखनऊ जाते रहे। अष्टभुजा जी से आश्वासन पाते रहे। मुक्तिनाथ को ध्वस्त करने की योजनायें बनाते रहे।''' अष्टभुजा जी समझाते रहे कि मुक्तिनाथ जिले के लिए घातक तत्त्व है। उसे अगले चुनाव में सबक सिखाना है।

पर धीरे-धीरे सब कुछ स्पष्ट होता गया। इन्तजार, केवल इन्तजार रहा। अकाल के नाम पर एक फूटी कौड़ी भी नही मिली। सूरज दा चिन्तित हो उठा। उसके भीतर कई-कई सवाल उठ खडे हुए। लगा कि इस देश मे नेता ही सब कुछ हैं। जब-जब चुनाव आया, हाथ-पैर जोड़कर कुर्सी हथिया ली। और जनता की ओर पीठ फेरकर बैठ गये। क्या जनता की कोई ताकत नही कि वह अपने ऐसे प्रतिनिधियों से निबट सके ?

एक शून्य उसके चारों ओर लगातार घिरता गया। वह गाँव की चौहद्दी में खडा होकर निहारता रहा—देश की आत्मा। बुझी-बुझी-सी, मरियल और उदास। उसे लगा कि यह सब अष्टभुजाओं का शुक्र है। इनसे कैसे लडा जाय ?

लगभग रोज उसके भीतर यह सवाल उमड़ता रहा।

☐ ☐

और फिर सूरज दा चुप नही रहा। उसने गाँव के चौधरियो की एक मीटिंग बुलायी। अपनी लखनऊ-यात्रा का पूरा किस्सा बयान किया। बात चिनगारी से उठकर एक दावाग्नि की शकल मे तब्दील हो गयी।

देहात मे घटनाओ का सिलसिला निरन्तर बढ़ता रहा। आये दिन डकैती, लूट, अपहरण की खबरें और उनमें अष्टभुजा जी का सरक्षण चर्चित होने लगा। चौधरियो ने 'डाकू विधायक—कुर्सी छोड़ो', 'कुत्ते को वोट

देना वन्द करो' जैसे पोस्टर छपवाये। और उन्हें देहात से लेकर शहर के चप्पे-चप्पे तक चिपका दिये।

लेकिन वात कुछ नही बनी। सरकार चलती रही। अष्टभुजा जी फूलते-फलते रहे। अन्तराल गुजरता रहा।

और एक दिन दीवारों पर 'गुमशुदा की तलाश। शीर्षक से यह पोस्टर भी पाया गया—अष्टभुजा नामक एक देशभक्त (?) वालक, जिसकी उम्र सिर्फ बावन साल है; खो गया है। खादी के कुर्ते में चम्बल का आतंक छिपाये, कुर्सी को कलङ्कित करने की पारम्परिक गरिमा बनाये, लखनऊ की विधानसभा में पाये जाने का विश्वास है। मासूम लडकियों का वलात्कारी (वतर्जे—फलाहारी) भोजन, फोन या बँगले पर देवी फूलन, मोटे सेठ, और मुख्यमन्त्री से वात करना उसकी 'हॉबी' है। आजमगढ की सड़कों तक पहुँचाने वाले को जनता की ओर से वधाई और उस वच्चे की ओर से पहुँचाने वाले का सिर कलम कर देने का भारी पुरस्कार दिया जायेगा।—निवेदन : जनता।···

पानी अब सिर से ऊपर गुजरने लगा था। विधानसभा में इस वात पर जोरदार हंगामा हुआ। विरोधियो ने पोस्टर दिखाकर अष्टभुजा जी को 'सम्मानित' किया। उन्होंने कहा कि ऐसे ही कर्णधारों से प्रजातन्त्र चलता है। इस वात के लिए अष्टभुजा जी का नागरिक अभिनन्दन किया जाना चाहिए।···

अष्टभुजा जी पुरइन के पात ठहरे। उन पर इस पोस्टरवाजी का कोई असर न हुआ। वल्कि उनकी जनसेवा की गतिविधियाँ और तेज हो गयीं। एक शाम अज्ञात तत्वो द्वारा चौधरियों की वस्ती धू-धू जल उठी। वर्षों के श्रम से संचित घर आग की लपटों में स्वाहा हो गया। हाहाकार मच गया।

प्रधान जी आये, दरोगा जी आये, कोतवाल जी आये। अष्टभुजा जी के सहयोगी परदेसी जी आये। सबने अपनी आँखों की कोर [illegible] और लौट गये।

सूरज दा दौड़ता रहा। पंचों के साथ शहर जाता रहा। कलक्टर को ज्ञापन देकर जांच की मांग करता रहा। परदेसी जी ने कहा, "क्यों परेशान हो सूरज जी ! हम तो हैं ही। मामले को देख लेंगे।"

"तो अभी और कुछ देखना बाकी है ?" सूरज दा बिगड़ उठा।

परदेसी जी चोट खा गये, "आप तो ऐसे कह रहे हो जैसे आग हमने लगायी हो !"

"फिर किसने लगायी ?"

"तो आप यहाँ तक सोच गये ! अब चलता हूँ, लेकिन कहे देता हूँ कि ज्यादा आगे बढ़ने की कोशिश की तो काफी महँगा पड़ेगा।"

और जिन दिनों देहात में इस बहस का बाजार गर्म था, अष्टभुजा जी ने अखबारों में वक्तव्य दिया कि वे अपने क्षेत्र में आगजनी की घटना से बहुत क्षुब्ध हैं। अराजकतत्वों को सजा देने के लिए शीघ्र कड़े कदम उठाये जायेंगे। घरहीन चौधरियों को पाँच-पाँच सौ रुपये की राशि सहायतार्थ दी जायेगी।...

मगर कुछ नहीं हुआ। 'बच्चा' गुमशुदा ही रहा।

और अब ये भी दिन थे कि अष्टभुजा जी के लिए किसी इश्तहार की जरूरत नहीं। वह स्वेच्छा से देवदूत की तरह भू पर उतर पड़े थे। नये-नये विद्यालय बनवा रहे थे। जहाँ नाले तक नहीं थे, वहाँ नहरें निकाल रहे थे। अस्पताल खुलवा रहे थे। होंठों पर एक अलकापुरी बसा रहे थे।

□

चौधरियों की बस्ती जैसे सो रही थी। सोते-सोते जाग रही थी। एक दुःस्वप्न की स्थिति में बड़बड़ा रही थी। एक आतंक था, जो समूची बस्ती को पीले पत्तों-सा बेजान कर गया था। क्या पता, अष्टभुजा शर्मा के लपलपाते हाथ किस दिशा से आयें, और बस्ती के लोगों को मछलियों की तरह भूनकर रख दें !

पर एक आग थी, जो घरों में भू-भू जल रही थी।

उधर सूरज का अभियान अपनी चरम सीमा पर था। वह अकेला था। भीड़ न जुलूस। न देश बदलने के दावे। सिर्फ एक गुहार, जो कवचहीन होकर देहात के जन-जन में उतर जाने में समर्थ थी। अगर सूरज कोई राजनैतिक व्यक्ति होता, मदनलाल अग्रवाल 'धरतीपकड़' होता, घोड़ेवाला होता, तो उसकी आवाज से एक ऐसी बू आती जो कुर्सी के स्वप्नदर्शी होंठों से आम होती है। और तब सभव था कि लोग उसके शब्दो पर थूक देते। लंतीफों पर हँसते। उसके प्रहसन की प्रतीक्षा करते। लेकिन मतदान के निर्णयात्मक क्षणों में किसी 'अटल' व्यक्तित्व का चुनाव करते।

मगर वह नेता नहीं था। एक याचक था, जो सरे-बाजार जनता

न्याय की मांग कर रहा था। वह एक मार्ग-दर्शक था, जो उंगलियाँ उठाकर बताता था, कि इन रास्तों से एक भेड़िया गुजरेगा, जिसकी मुस्कान उसके दाँतो से भी अधिक धारदार है। लोगो ! उसकी मुस्कान पर मत जाओ। बचो-बचो, वह भेड़िया आ रहा है।

बात क्योंकि अखबारों की सुर्खी का विषय बन चुकी थी, इसलिए जनता के इरादे साफ होते चले गये। सूरज अपने पीछे एक लीक छोड़ता हुआ दिशाओ में दौड़ रहा था।

□ □

अष्टभुजा जी का नाटक जोरों पर था। उनका विचार था कि सब कुछ योजनाबद्ध ढंग से होना चाहिए। स्वयं कुछ मत बोलो। विरोधियों को बोलने दो। और ऐसे मौके पर हवा का रुख पहचानो। रुख पैदा करो। जब तक यह न हो सके, जनसेवा करो।

अष्टभुजा जी हवा के रुख के लिए प्रतीक्षित थे।

उनके कार्यकर्ता शहर और कस्बों के चक्कर लगा रहे थे। जरूरतमंद लोगो को कम्बल बँटवा रहे थे। भिखमंगों को भोजन करा रहे थे। कोई अपील नही। सिर्फ जनसेवा।…जनसेवा।…और जनसेवा।

ऐसी ही शुभेच्छा की एक सुबह उनका दल गाँवो की ओर निकल पड़ा। अखबारो मे एक दिन पहले ही यह खबर 'फ्रन्ट पेज' पर आ चुकी थी—शहर के नवयुवको का एक दल विख्यात समाजसेवी श्री परदेसी जी के नेतृत्व में कल से निर्जल व्रत के साथ देहात मे श्रमदान के लिए यात्रा करेगा।…

गाँव में जैसे ही परदेसी जी की गाड़ी पहुँची, कार्यकर्ताओं ने प्रधान के दरवाजे पर पहुँचकर सस्वर पाठ शुरू किया—

सोने-चाँदी से नही
किन्तु तुमने मिट्टी से किया प्यार
हे ग्राम-देवता, नमस्कार !…

प्रधान ने देखा तो चकरा गया। पूछा, "क्या सेवा करें ?"

चर्चा हो। लावारिस जगह पर फावड़ा चलाने से क्या फायदा? पिछले दिनों हरिजन-उत्पीड़न की खबरें अखबारों में खूब छपीं। क्यों न हम इस बार हरिजनोत्थान कर डालें?"

बात सबको पसन्द आयी। वे हरिजन बस्ती की ओर निकल गये। काफी देखभाल के बाद उन्होंने एक घर के सामने की जमीन को ऊँची-नीची पाया। तय हुआ कि इसे खोदकर समतल कर दिया जाय। ज्यादा मेहनत भी नहीं करनी पड़ेगी। एक झटके में ही हरिजनोत्थान हो जायेगा।

मगर डर था कि वहाँ कोई श्रमदान में टाँग न अड़ा दे।

सोच-विचारकर वे बस्ती मे फिरने लगे। अधिकांश घरों के दरवाजे बन्द थे। मजदूर अपनी बीवियों सहित काम पर चले गये थे। सामने, पेड़ के नीचे एक लँगड़ा आदमी चिलम चढ़ाये बैठा था। कार्यकर्ताओं ने उसे झुककर सलाम किया तो वह खुश हो गया। एक-दो लोग उसकी चारपाई पर बैठ गये। पूछा, "पिता जी, आपका स्वास्थ्य कैसा है?"

"सेहत तो ठीक है, बेटा!" लँगड़े ने खाँसकर कहा, "सुराजी लगते हो!"

"जी हाँ, जी हाँ।" कार्यकर्ताओं को अचानक एक सूत्र मिल गया।

"हम भी सुराजी हैं।" लँगड़ा अपनी मूँछों में मुस्करा उठा। जैसे वह एक क्षण में अपनी बिछड़ी हुई औलादों को पहचान गया हो। वह बताने लगा कि उसने गुलाम भारत के दिन देखे हैं। ऐसी ही धुली हुई खादी में सुराजी गाँव-गाँव घूमकर अपना जनमत तैयार करते थे। उन दिनों वह पंडित नेहरू का दाहिना हाथ था।···

···लँगड़ा बहुत खुश था कि अब देश आजाद होगा। और हरिजन ब्राह्मणों की तरह-पूजा . . . . . .
की उपाधि से विभूषित ह . . . .
—यत्र हरिजना : पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।

देश आजाद हुआ। मगर ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। लँगड़ा महीनों प्रतीक्षित रहा कि इन रास्तों से गाँधी और पटेल गुजरेंगे।···

बाद के दिनों में वह सुबह तड़के शहर निकल जाता। लौटकर बताता कि पंडित नेहरू उसे 'मनिस्ट्री' में लेना चाहते हैं। लेकिन उसने साफ इन्कार कर दिया। फिर भी जान नहीं छोड़ते। कहते हैं—आपका मार्ग-दर्शन चाहिए। क्या करें ? जब भी बुलाते हैं, जाना पड़ता है।

लँगड़ा गांव की समस्याओं की कई-कई लिस्ट तैयार करता। और बताता कि वह इन पर नेहरू जी से चर्चा करेगा।

दिन बीतते गये। उसने शहर जाना बन्द कर दिया। अपनी आँखों से वह अपने वंशजों की हत्या-शोषण-बलात्कार देखता रहा। तम्बाकू की सुड़क पर खाँसता रहा। चुटकियाँ बजाकर बताता रहा कि बापू मरे नहीं हैं। अँग्रेजों ने उन्हें अपने देश बुलाकर कैद कर लिया है। भारत सरकार अँग्रेजों का कुछ नहीं बिगाड़ पायी, इसलिए इसने बापू का डुप्लीकेट ढूँढकर उसकी हत्या करा दी।

मगर धैर्य रखो। बापू जरूर आयेंगे। हिन्दुस्तान एक बार फिर बदलेगा। जरूर बदलेगा।

☐ ☐

यों लँगड़ा सुराजी पिछले कई वर्षों से देहात के लोगों के लिए मनोरंजन का माध्यम हो गया था। सड़क-चौराहों पर लोगों का मजमा उसे आवाज देकर चाय का एक कप थमा देता। और वह शुरू हो जाता।

"हाँ तो नेता जी, नूरजहाँ—वह पाकिस्तानी गायिका, आप उसे जानते हैं ?" कोई एक छेड देता।

"जानते हैं ? अरे वह तो नेता जी की लैला थी, लैला। इन्हीं के लिए तो उसने दिलीप कुमार को भी थप्पड़ मार दिया था।"

"मगर वह नेता जी को छोड़कर पाकिस्तान क्यों चली गयी ?"

"बेवफा निकली।" सुराजी आह भरकर जवाब देता।

लोग ठठाकर हँस पड़ते।

"और उसने दिलीप कुमार को थप्पड़ क्यों मारा था ?"

सुराजी अपनी प्रेमगाथा बताने लगता कि उन दिनों वह नया

फौज में भर्ती हुआ था कि उसे युद्ध में जाने का ऑर्डर मिला। खेलने-खाने की उम्र और कहाँ बन्दूकों की धांय-धांय ! उसके तो हाथ-पाँव ही फूल गये। मगर जब कदम बढ़ा ही दिया तो किस बात का डर? बजरंगबली का नाम लेकर एक ही गोली में सौ दुश्मनों को जमीन पर सुला दिया। दुश्मन मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। सरकार बहुत खुश हुई। अखबार वालों ने उसकी फोटो छापी। इधर नया-नया खिताब मिला उसे 'परम-वीर चक्कर' का। और उधर नयी-नयी शोहरत थी नूरजहाँ की 'फिलम लैन' में। बस, कुछ मत पूछो। नूरजहाँ उस पर मर-मिटी। खतोकिताबत शुरू हुई। और वह हर शनिवार को दिल्ली से जहाज में बैठकर, उससे मिलने बम्बई जाने लगा।

ऐसी ही एक शाम, वह बम्बई की एक पार्टी में था। नूरजहाँ ने उसके गले में बाँह डालकर सरेआम कह दिया कि वह जल्दी ही अपने फौजी महबूब से शादी करने जा रही है।

"लेकिन जानते हो, क्या हुआ ?" सुराजी बताता, "इतना कहना था नूरजहाँ का कि फिलम लैन वालों को काटो तो खून नहीं। दिलीप कुमरवा बौखला गया। कहने लगा—नूरजहाँ, तेरे से मैं शादी करूँगा। नूरजहाँ भी एक नागिन। उसने पलटकर वो करारा थप्पड़ दिया कि दिलीप कुमार का मुँह घूम गया।"

सुराजी दिलीप कुमार का चेहरा यादकर खी-खी हँसने लगता। लोग तालियाँ बजा उठते।

कोई पूछता, "आप यह कबकी बात कर रहे हैं ? उस वक्त कौन-सा युद्ध हुआ था ?"

सुराजी नाक से संगीत निकालने लगता। लोग कहते—डिस्टर्ब मत करो। नेता जी बहुत बड़े संगीतकार हैं। अभी नाक से सातों सुर निकालेंगे।…सुराजी बताता कि कब उसकी नाक से संगीत निकालने की कला से प्रभावित होकर लक्ष्मीकान्त प्यारेलाल ने उसका पैर छू लिया, कि किस तरह उसने नवाब पटौदी को क्रिकेट खेलना सिखाया !…"

एक सुबह किसी ने उसे सूचना दी कि सुराजी को मुख्यमन्त्री चुन लिया गया, अखबार में खबर आयी है। अगले दिन तपती दोपहरी में वह लाठी टेकता हुआ शहर के पुस्तकालयों के चक्कर लगाता रहा।... किसी ने कह दिया कि अमुक फिल्म में, जिसकी शूटिंग शिमला में हुई थी, उसका रोल है, तो उसने वह फिल्म लगातार दस बार देखी। अन्ततः जब उसने परदे पर अपने को नहीं पाया तो बहुत नाराज हुआ कि सिनेमाघर वाले उससे जलते हैं, उसका रोल काटकर फिल्म दिखाते हैं। हालांकि देहात के लोगों सहित वह स्वयं भी इस बात को अच्छी तरह जानता था कि उसने आज तक आजमगढ़ जिले की सीमा के बाहर कभी कदम नहीं रखा।

□ □

और आज इतने वर्षों बाद, उसे लगा कि नेहरू और पटेल एक बार फिर उन्हीं पगडंडियों पर लौट आये हैं। पूछा, "कैसे आना हुआ ?"

परदेसी जी के सामने अचानक ग्राम-प्रधान का चेहरा घूम गया। उन्होंने कहा, "आपकी बस्ती में जवान लड़कियाँ हैं ?"

"क्यों ?"

"हम श्रमदान करना चाहते हैं।"

सुराजी बोला, "मुझे क्या करना होगा ?"

"जी, आप कहें तो हम उस घर के सामने की जमीन खोदकर बराबर कर दें !"

लंगड़ा हँस पड़ा, "यह तो सुराजियों का पुराना काम है—खोदकर भरना।"

सहमति पाते ही उन्होंने गाड़ी से फावड़े निकाले और काम में लग गये।

दोपहर तक मजदूर अपने घरों को लौटे।

बिमुना ने अपनी झोंपड़ी के सामने एक लम्बी खाईं देखी तो अचानक घबरा उठा। कार्यकर्ता खाईं के एक किनारे खड़े हाँफ रहे थे। उनके पेट

की आँतें कुलबुलाने लगी थीं। एक कार्यकर्ता फुसफुसा उठा, "परदेसी भैया, आप मानो या न मानो पर मैं तो कहूँगा कि इस देश में हरिजनोत्थान कभी नहीं हो सकता।"

"क्यों ?" परदेसी जी सहसा चिन्तित हो उठे।

"चाय न सिगरेट, बस उत्थान-ही-उत्थान ? कब तक चलेगा ऐसे ?"

"अरे लल्लू की औलाद, हरिजनोत्थान होता नहीं, किया जाता है। हो जाय तो अगली बार करने को क्या बचेगा ?"

"मगर भूखे पेट तो नहीं करते बनता।"

परदेसी जी ने आँखें तरेर दी, "तुम रहे उल्लू-के-उल्लू !"

"धत् तेरे की, मुझे तो अखबार वाली बात ही भूल गयी।" कार्यकर्ता ने दाँतों-तले उँगली काट ली, "लेकिन परदेसी भैया, उस न्यूज ने तो आपकी जनसेवा में चार चाँद लगा दिया। शहर में कितनी चर्चा है आपकी ! निर्जल श्रमदान, वाह-वाह क्या सूझ है !"

परदेसी जी बोले, "हुल्लड़ मत मचाओ। थोड़ी-देर और सब्र करो। फिर कोई सुरक्षित जगह ढूँढकर कुछ खा-पी लेंगे।"···

अचानक उनकी दृष्टि बिसुना पर पड़ी। वह हिंसक आँखों से उन्हें घूर रहा था, "कौन हो तुम लोग ?"

"जी, हम लोग शहर से आये हैं। आप की से···।" वे हकलाने लगे।

"तो मेरी सेवा करोगे ? किसने बुलाया था तुम्हें ?" बिसुना खूँखार हो उठा।

मुराजी पेड़-तले स्थितियों का जायजा लेता रहा। वह लाठी टेकता हुआ आया, "अरे बिसुना, नाराज नहीं होते। ये सरमदानी लोग हैं। जो भी करे, करने दो।"

बिसुना कुछ ठंडा हुआ। पूछा, "सरमदान क्या होता है ?"

मुराजी ने समझाया, "सरमदान का मतलब, ये लोग कुछ खोदें-पाटेंगे। सरकार इसे अच्छा काम मानती है।"

जायेंगे। प्रधानमन्त्री से आपका अभिनन्दन करवायेंगे। आपके मिल जाने से हमारा देश-सेवा का व्रत कितना आसान हो गया !"

सुराजी बोला, "परदेसी साब, हम आपसे अलग थोड़े ही हैं। जवान नहीं रहे तो क्या ? कभी मौका दो तो एक बार फिर बन्दूक उठाकर दिखा दें। आपके पास एक बीड़ी होगी ? सिगरेट भी चलेगा।"

"धन्य हो, धन्य हो। देश को आज ऐसे ही सपूतों की जरूरत है।" परदेसी जी ने उसे सिगरेट थमा दी, "तो क्यों न आज ही हम आपसे बन्दूक उठवा लें ?"

"उठवा लो।" सुराजी ने सिगरेट सुलगा ली, "मगर किस लिए ?" वह सकपका गया।

"बात यह है कि आज की रात हम आपके गाँव मे गुजारेंगे। कल कहीं और। हमने तय किया है कि आज इस बस्ती में शाम से सुबह तक, मतलब सूर्य की आखिरी किरण से लेकर पहली तक प्रौढ़ पाठशाला का अखंड क्लास चलायेंगे। आप कुछ विद्यार्थियों का इन्तजाम कर दो।"

सुराजी ने कहा, "यह तो मेरे लिए हँसी-खेल हैं। बस्ती में सरधालू (श्रद्धालु) लोगों की कमी नहीं है। अभी मजमा जुटाये देता हूँ। लेकिन परदेसी साब आप परधानमन्तरी से मिलने कब जाओगे ? अरे वे तो मेरा नाम खुद जानती होंगी। कभी पूछना, पूछकर देखना।"

"हाँ-हाँ, बहुत अच्छी तरह जानती हैं।" कार्यकर्ता बोल उठे, "वे तो अकसर शिकायत भी करती हैं कि आप कभी दिखायी नहीं पड़ते !"

□ □

सूर्य डूबने को था, कि नीम की छाँव में लोग जमा हो गये। बूढ़े-बच्चे-महिलायें—सब हाथ जोड़े पड़े थे। कहीं से ईंट-रोड़ा जुटाकर एक तख्ते का इन्तजाम किया गया। और उसे पेड़ के सहारे खड़ा कर ब्लैक बोर्ड बना दिया गया। रात को चार हिस्सों में बाँटकर तय हुआ कि किस चक्र में कौन पढ़ायेगा !

आरम्भ में परदेसी जी ने सभा को सम्बोधित किया। उन्होंने 'साक्ष-

रता की आवश्यकता' विषय पर बोलते हुए कहा, "दोस्तो, आप हरिजन हैं। यानि हरि के जन। भगवान के वंशज। आपकी धरती की धूल माथे चढ़ाकर आज हम जनसेवी स्वर्ग का सुख प्राप्त कर रहे हैं। यह समय का फेर है कि आप जैसी देव-सन्तानों को समाज ने अछूत की संज्ञा दे दी है। लेकिन हमारे हृदय में ऐसा कलुषित विचार नहीं है। हम तो बापू के सपनों को साकार करने निकले है। आज हम आपके घरों में ही भोजन करते। पर हमने निर्जल व्रत के साथ समाजसेवा का अभियान शुरू किया है। हमारी मजबूरी है। हम चाहते हैं कि आपकी बस्ती साफ-सुथरी हो। इसके लिए हमने श्रमदान का कार्य चुना। हम चाहते हैं कि आप पढ़ें-लिखें। हमने प्रौढ़-पाठशाला चलाने का निर्णय लिया। हमारा उद्देश्य है कि आप देश को अपने कन्धों पर उठायें। सवर्णों को बतायें कि भारतमाता के सपूत किसी जाति-विशेष में पैदा नहीं होते। वे उसके कण-कण मे बिखरे हुए हैं। उन्हें अपनी शक्ति दिखाने का मौका मिलना चाहिए।···आज हमें आपके ही एक ग्राम्यवासी एवं प्रसिद्ध सुराजी नेता के सहयोग से यह कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो हमारे बीच हैं। ये देश के गौरव है। इन्हे कौन नहीं जानता? देश के जर्रे-जर्रे पर इनका नाम लिखा हुआ है। प्रधानमन्त्री अकसर इनकी चर्चा करती है। इन्हे दिल्ली बुलाने का अनुरोध करती है। पिछले दिनों प्रधानमन्त्री ने इन्हें कई पत्र लिखे। पर इनके मन मे अपनी मिट्टी से अटूट प्यार है। ये उसके लिए सारी दुनिया छोड़ सकते हैं। मगर जिस वत्सला धरती की गोद में बड़े हुए, उसे हर्गिज नही छोड सकते। यह इनका आपके प्रति किया गया त्याग है।···दोस्तो, मैं चाहूँगा कि इस महान् त्यागी के आशीर्वचन से आज की शिक्षा का कार्यक्रम उद्घाटित हो।"

लोग परदेसी जी के अन्तिम वाक्यों पर भौचक्के रह गये।

सुराजी उठ खड़ा हुआ। उसने कहा, "साथियो, मैं बूढ़ा हो गया हूँ। पहले वाली बात अब नही रही। वरन् कुछ कर दिखाता। तो भी आपकी जो समसियायें हों, मुझे बताना। मैं परधानमन्तरी से बात..."।

सारा देस जानता है कि मैं और महातमा गाँधी ने ''गाधी जी और मैंने''' मिलकर'''और गांधी जी ने भी क्या ?'''मैंने ही'''सुराज'''मैं तो'''मैं आपका ज्यादा वक्त नही लेना चाहता। अब आप पढ़ें और भगवान से निवेदन करें कि वह सबका बेड़ा पार करे।"

सम्बोधन की रस्म अदायगी के बाद परदेसी जी सुराजी को लेकर उसकी झोपड़ी की ओर निकल गये। अध्यापक के रूप में एक कार्यकर्ता और बस्ती के लोग आमने-सामने थे। कार्यकर्ता ने सबसे पहले सरस्वती वन्दना की। लोगो ने साथ-साथ दुहराया—वर दे वीणावादिनि, वर दे।'''

औरतों ने साड़ी का पल्लू मुँह में दबा लिया, "हाय दइया, यह कैसी वन्दना है ? इस बुढ़ापे में सरस्वती मैया वर दे ? अभी मास्टर जी यह भी न कहलवायें कि सरस्वती मैया, मेरी माँग भरदे !"

कार्यकर्ता ने पाठ आरम्भ किया, "तो विद्यार्थियो, सबसे पहले आपको वर्णमाला सीखनी होगी। वर्णमाला का पहला अक्षर है क। क से कौवा। यानी कागभुसुंडि। कागभुसुंडि का जिक्र आपने रामायण मे सुना होगा, कि उसने सीता जी के स्तन मे चोंच मारी थी। सीता जी राजवधू थी। रूप की देवी थी। उन्हें देखकर कागभुसुंडि का मन मचल गया।"

इस वाक्य के साथ शिक्षक का ध्यान, औरतो की ओर गया। उसने पूछा, "इस कक्षा मे महिलाओं की युवा पीढी नही है ?"

"हाँ, युवा पीढ़ी नही है।" भीड़ से एक आदमी उठ खड़ा हुआ, "क्योकि तुम्हें उनके राजवधू जैसे स्तन देखने हैं। बूढी महिलाओ से तुम्हारा मन खट्टा हो रहा है। हरामजादा, सीधे क्यो नहीं कहता कि इस बस्ती की छोकरियों को कोकशास्त्र पढ़ाना है !'''गाँव वालो, तुम्हें यह क्या हो गया है ? ये गिद्ध तुम्हारे घरों में घुसकर तुम्हारी माँ-बहनों की अस्मत निहार रहे है। और तुम शिक्षित बनकर देश सुधार रहे हो ? अरे, ये किसी आश्रम के सन्यासी नही, अष्टभुजा के चमचे हैं। लोगों, होश में आओ !"

"पकड़ो-पकड़ो लफंगे को। भागने न पाये।" कार्यकर्ता चिल्लाया।

भीड़ से उठकर लोगों ने उसे कई घूसे-थप्पड़ लगा दिये। मगर वह चीखता रहा, "मारो, मुझे और मारो मूर्खो! लेकिन तुम्हे क्या पता कि लफंगा कौन है!"

और सहसा उसका पक्ष लेने वाले भी निकल आये, "रुक जाओ। क्या करते हो? ये ठीक कह रहा है।"

"ठीक कह रहा है? गुंडा, गाली बकता है।" लोग उत्तेजित थे।

पक्षधर तन गये, "गाली बकता है तो क्या कर लोगे? चलो, लगाओ हाथ।"

देखते-देखते लोगों का बयान बदल गया, "भैया, ये शहर के लोग हैं। इनसे भगवान बचाये। कभी सूखा-अकाल पड़े, भूख से मर जाओ तो कोई दो रोटी और कफन देने नहीं आयेगा। पेट भरा रहेगा तो प्रौढ़-पाठशाला के बहाने गाँव में लड़कियाँ फँसाने चले आयेंगे। जा रे जमाना…।"

शोर-गुल सुनकर सुराजी हाँफता हुआ आया। परदेसी जी ने बहुत भाषण दिया। सुराजी ने कहा, "अरे, ये तो पगला सूरज है। तुम लोग इसकी बातों पर मत जाओ!"

लेकिन भीड़ छँट गयी।

महिलायें अपने घरों में वक्त को धिक्कारने लगी, "राम-राम। अब धरम के नाम पर भी यह सब होगा? दुनिया में किसी का विश्वास नहीं रहा।"

सूरज बस्ती की एक झोंपड़ी मे पड़ा हँस रहा था। उसकी चोटों पर लोग मरहम लगा रहे थे।

□ □

सुराजी रात भर परदेसी जी को आश्वासन देता रहा, कि अगले दिन ऐसा कुछ भी नहीं होगा। वह सूरज को लाठी से मीलों खदेड़ आयेगा।

और क्लास जरूर चलेगा। परदेसी जी को हारना नहीं चाहिए। वह सुराजी को बस एक मौका और दें।

और परदेसी जी कार्यकर्ता पर बरस रहे थे, "सरऊ, आते ही शुरू हो गये। दो दिन कन्ट्रोल नहीं कर सकते थे?"...

परदेसी जी ने ठीक यही समझा, कि अब आगे कुछ भी करने से पहले, इस मामले की सूचना अष्टभुजा जी को दे दें। और उनके आदेश से सूरज को ठिकाने लगा दे। रहेगा बांस न बजेगी बंशी।

सुबह तड़के, उन्होंने एक कार्यकर्ता को शहर भेज दिया।

पर अष्टभुजा जी ने साफ मना कर दिया। उनका कहना था कि चुनाव का मौसम है। खून-खराबा करना ठीक नहीं। इससे जनता पर बुरा असर पड़ेगा। उन्होंने आदेश दिया कि परदेसी जी का दल तुरन्त वह गाँव छोड़ दे। और श्रमदान के लिए कोई नया क्षेत्र चुन ले।"

कार्यकर्ता अब एक दूसरे गाँव की ओर चल पड़े।

□

चुनाव का दिन निकट आता जा रहा था। अष्टभुजा जी अब अपने पूरे 'फार्म' में थे। वह क्षेत्र को एक सिरे से 'कवर' कर रहे थे। हर शाम पार्टी-ऑफिस में मीटिंग होती। विवरण सुनाया जाता कि किस क्षेत्र में कितनी जनसभायें हुईं? कितने जुलूस निकले? किन-किन प्रमुख हस्तियों से व्यक्तिगत सम्पर्क हुआ? अनुमान लगाया जाता कि किन जगहों में अष्टभुजा जी का जाना परमावश्यक है? और कहाँ कव्वाली-कहरवा के बिना कुछ नहीं हो सकता?

परदेसी जी श्रमदान-यात्रा से लौट चुके थे। वह अपना अधिकांश समय अष्टभुजा जी की जनसभाओं में दे रहे थे। उनका विचार था कि कुछ भी करने से पहले हथेलियाँ सुरक्षित कर ली जायें। काँटा जैसे ही चुभे, उसे निकालकर एक कोने में लगा दो। वरन् वह नासूर पैदा करेगा। और अन्ततः ले डूबेगा।

अष्टभुजा जी ने कहा, "शिष्यो, इस तरह घबराओगे तो मन्दिर खोलकर बैठ जाओ। राम-नाम जपो। परदेसी प्यारे, हमने भी बड़े-बड़े नेताओं के बिस्तर ढोये, गरम किये। मुफ्त में ही राजनीति में नहीं आ गये। यह तो हर बार होता है। हर चुनाव में अनगिनत सूरज निकलते-

करता हूँ। जनतन्त्र में सबको एक मंच से अपनी बात कहने का पूरा अधिकार है। आज खुले रूप में आप से मैं यह माँग करता हूँ कि श्रद्धेय सूरज जी आकर मेरे ही मंच से अपनी बात कहे। अगर मैं अपराधी साबित होऊँ तो जनता सरेआम मुझे भंगी बना दे। दोस्तो, किसी पर दूर से कीचड़ उछालना बहुत बड़ा अन्याय है। अपराध घोषित करना आसान है। लेकिन उसे प्रमाणित करना बहुत कठिन।···फिलहाल आपके कटघरे में खड़ा होकर, आपकी अदालत से आज मैं न्याय की प्रार्थना करता हूँ। आपके न्याय और दण्ड को, आपका प्रसाद समझकर मस्तक चढ़ाऊँगा।"···

चन्द क्षणों में लोगों का रोष थम गया। जनता ने सूरज दा को अष्टभुजा जी के मंच पर खड़ा कर दिया।

सूरज ने सवालों की बौछार कर दी कि क्षेत्र को अकाल से बरी किसने घोषित किया, कि चौधरियों के मकान किसने जलाये? देहात के अमुक-अमुक अपहरण-बलात्कार के पीछे कौन जिम्मेदार है? यदि अष्टभुजा शर्मा हीरों-जड़े हैं तो उन्होंने चौधरियों के पोस्टर का जवाब क्यों नहीं दिया?···उस क्षेत्र को अभी कब तक लूटने का इरादा है? आदि आदि।

इन सवालों के जवाब अष्टभुजा जी ने एक संयमशील विपपायी की तरह दिये। जवाब जो भी थे, जनता उनसे संतुष्ट तो नहीं थी। पर हरेक को इस बात की खुशी थी कि अष्टभुजा जी ने सूरज के सवालों को पूर्णतः उचित माना और वे चाहते थे कि सूरज उनकी हर जनसभा में इस तरह आमने-सामने भाषण करे। नतीजा सामने आ जायेगा। क्योंकि जनता परमेश्वर होती है। उसका निर्णय कभी गलत नहीं होता।

चलते समय अष्टभुजा जी सूरज दा को अपनी जीप में लेते गये। उस दिन उन्हें एक और सभा को सम्बोधित करना था।

इस व्यवहार की लोगों पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

उन्होंने कहा, "जो भी हो, अष्टभुजा शेर है। विरोध से नहीं डरता।"

डूबते हैं। लेकिन चुनाव का ऊँट उसी करवट बैठता है, जिधर हम चाहते हैं। लोग कहते हैं कि अष्टभुजवा बेईमान है। पत्ता साफ करो इसका। पर हम तो इतना जानते हैं, जब तक विन्ध्यवासिनी मैया की कृपा रहेगी, कोई उखाड़ नहीं सकता हमारा। आखिर हम भी नवरात्रि भर वही मैया की सेवा में डटे रहते हैं।"

मगर अष्टभुजा जी को अपनी सोच के शिखर उस दिन हिलते दिखायी दिये, जब उन्होंने अपने कानों सूरज दा को बोलते हुए सुना। वह देहात की एक सभा को सम्बोधित कर रहे थे। दूर तक फैली हुई भीड़ बहुत तन्मयता से उनका 'प्रवचन' सुन रही थी। अष्टभुजा जी बहुत खुश थे कि अगर इसी तरह दो-चार शान्तिपूर्ण सभायें हुईं तो स्थिति पलटते देर नहीं लगेगी। विरोधियों के हौसले पस्त हो जायेंगे।

अचानक पता नहीं कहाँ से वह आ पहुँचा। और अष्टभुजा जी की सभा से थोड़ी दूर हटकर 'जहर' उगलने लगा। क्षण भर को जनता स्तब्ध रह गयी। और दूसरे क्षण भीड़ सूरज के सामने थी। लोग उसके भाषण पर तालियाँ बजा रहे थे। देखते-देखते नारों की बौछार शुरू हो गयी। और भीड़ ने अष्टभुजा जी के खिलाफ आक्रामक रूप ले लिया।

अष्टभुजा जी ठगे-से रह गये। भीड़ का रोष लगातार बढ़ता जा रहा था। कार्यकर्ताओं ने चाहा कि वे अष्टभुजा जी को गाड़ी में बिठाकर यथाशीघ्र वहाँ से निकाल ले जायें। नहीं तो कोई भीषण दुर्घटना हो सकती है।

मगर अष्टभुजा जी को आग से खेलने की आदत थी। उन्होंने इस उग्रता का जवाब मुस्कराकर दिया, "मेरे विद्वान मित्रो, बड़े हर्ष का विषय है कि आपके इलाके के जागरूक नेता आदरणीय श्री सूरज जी यहाँ उपस्थित हैं। सूरज जी पिछले कुछ समय से मेरे विरोधी हैं। इस विरोध के लिए उनका तर्क है कि मैं अपराधी हूँ। आप जानते हैं, भारतीय नेताओं की यह सबसे बड़ी कमजोरी है कि वे किसी भी हाल में अपना विरोध सहन नहीं कर सकते। लेकिन मैं जनतंत्र के विमल रूप में विश्वास

करता हूँ। जनतन्त्र में सबको एक मंच से अपनी बात कहने का पूरा अधिकार है। आज खुले रूप में आप से मैं यह माँग करता हूँ कि श्रद्धेय सूरज जी आकर मेरे ही मंच से अपनी बात कहें। अगर मैं अपराधी साबित होऊँ तो जनता सरेआम मुझे भंगी बना दे। दोस्तो, किसी पर दूर से कीचड़ उछालना बहुत बड़ा अन्याय है। अपराध घोषित करना आसान है। लेकिन उसे प्रमाणित करना बहुत कठिन।...फिलहाल आपके कटघरे में खड़ा होकर, आपकी अदालत से आज मैं न्याय की प्रार्थना करता हूँ। आपके न्याय और दण्ड को, आपका प्रसाद समझकर मस्तक चढ़ाऊँगा।''...

चन्द क्षणों में लोगों का रोष थम गया। जनता ने सूरज दा को अष्टभुजा जी के मंच पर खड़ा कर दिया।

सूरज ने सवालों की बौछार कर दी कि क्षेत्र को अकाल से बरी किसने घोषित किया, कि चौधरियों के मकान किसने जलाये ? देहात के अमुक-अमुक अपहरण-बलात्कार के पीछे कौन जिम्मेदार है ? यदि अष्टभुजा शर्मा हीरों-जड़े हैं तो उन्होंने चौधरियों के पोस्टर का जवाब क्यों नहीं दिया ?...उस क्षेत्र को अभी कब तक लूटने का इरादा है ? आदि आदि।

इन सवालों के जवाब अष्टभुजा जी ने एक संयमशील विपक्षी की तरह दिये। जवाब जो भी थे, जनता उनसे संतुष्ट तो नहीं थी। पर हरेक को इस बात की खुशी थी कि अष्टभुजा जी ने सूरज के सवालों को पूर्णतः उचित माना और वे चाहते थे कि सूरज उनकी हर जनसभा में इस तरह आमने-सामने भाषण करे। नतीजा सामने आ जायेगा। क्योंकि जनता परमेश्वर होती है। उसका निर्णय कभी गलत नहीं होता।

चलते समय अष्टभुजा जी सूरज दा को अपनी जीप में लेते गये। उस दिन उन्हें एक और सभा को सम्बोधित करना था।

इस व्यवहार की लोगों पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

उन्होंने कहा, ''जो भी हो, अष्टभुजा शेर है। विरोध से नहीं डरता।''

उन्होंने कहा, "वह एक सच्चा समाजवादी है। अपने मंच से विरोधियों को मौका देता है।"

उन्होंने कहा, "वह एक कुशल जादूगर है। सूरज को हिप्नोटाइज कर लेगा।"

उस दिन के बाद सूरज दा देहात में कहीं दिखायी नहीं पड़ा। अष्टभुजा जी की जनसभायें होती रहीं। वे अपनी देशसेवा के पुराण गाते रहे। विरोधियों को ललकारते रहे।

☐ ☐

शाम के झुटपुटे में चौधरी बाजार-भाव पर बातें कर रहे थे कि कोई आकर उन्हें कोस गया, "हिजड़ो, तुम चूड़ियाँ पहनकर ढोल उठा लो। नाचो-गाओ, मस्त रहो। तुम्हारा सूरज कुत्ते की तरह घसीटकर मार दिया गया और तुम घरों में पहेलियाँ बुझा रहे हो?"

और जब तक चौधरियों के कान खड़े हों, वह मन्त्र फूंककर जा चुका था। लोग हैरान थे। किसी ने कहा, "रवीन्द्र शुक्ल होगा। इलाके में ऐसे खतरे कौन मोल ले सकता है?"

चौधरियों ने उस रात खाना नहीं खाया। सो नहीं सके। वे रात भर इस खबर की संभावना पर बतियाते रहे। अन्ततः तय हुआ कि सच्चाई का इजहार होने तक बात दबा दी जाय। क्योंकि बात गलत भी हो सकती है। और अफवाह के पीछे खतरा मोल लेना उचित नहीं होगा।

दूसरे दिन इलाके में यह खबर आग की तरह फैल चुकी थी। इसके पहले कि चौधरियों के बीच जागरण हो, रवीन्द्र शुक्ल ने अपने दल सहित 'अष्टभुजा हराओ' आन्दोलन शुरू कर दिया। और उसके पीछे सिर्फ इतनी-सी आवाज कि अष्टभुजा शर्मा, तुम जीतकर विधानसभा में जाओ। तुम जनता के हो, जनता तुम्हारी है। तुम उस पर जी भर कहर ढाओ। लेकिन हमारा सूरज, हमें वापस करो।...

इस आवाज से देहात एक बार फिर काँप उठा। पता नहीं, इन लड़कों पर क्या गुजरे? लोगों ने कहा, "ये लड़के नासमझ हैं। लड़के

सूरज दा की तरह मार दिये जायेंगे। लड़के तिनकों पर पहाड़ उठायेंगे।''

पर आम लोगों का मत था कि रवीन्द्र शुक्ल कम्युनिस्ट नेता है। उस पर हाथ उठाना सरल नही। वह अष्टभुजा जैसों को काटकर फेंकवा सकता है।

चौधरियों पर इस आन्दोलन का बहुत असर हुआ। उन्होंने विचार-विमर्श किया। अपने भाई-बन्धुओ से सवाल किये कि उनके पास क्या बचा है? वे किस सुरक्षा की आशा मे यह सब झेल रहे है? वे किस दिन की ताक में है? उनकी जुबानें कब खुलेंगी? आखिर कब? उन्होने तय किया कि अष्टभुजा के षड़यन्त्र के चलते भले ही यह बस्ती लाशघरों के रूप मे बदल जाय, संभव है ये जिस्म सियार-कुत्तों की जायदाद हो जायें, लेकिन उनकी मांस का एक भी टुकड़ा जब तक जिन्दा रहेगा, चीखकर स्वयं को सूरज घोषित करेगा। सूरज एक नहीं, हजारो हैं। सूरज मर नही सकता।

उसके बाद, वे रवीन्द्र शुक्ल के साथ थे।

रवीन्द्र शुक्ल अपनी दिशा में बढता रहा। देहात को जनता उसके साथ बढती गयी। सूरज की हत्या एक वहुत बड़ा प्रश्न बनकर देहात के जन-जन मे उतर गयी। सूरज एक ध्रुवतारे की तरह आकाश पर छा गया।

परिणामतः अष्टभुजा जी की जनसभायें सूनी होती गयी। वह मंच से लखनऊ की राजनीति बखान रहे होते और पास खड़े पेड़-पौधे तक नकार की मुद्रा में सिर हिला देते। अष्टभुजा जी गाँव-गली से गुजरते। हवाओं मे नफरत के पृष्ठ फड़फड़ा उठते।

नतीजा साफ था।

परदेसी जी ने कहा, ''भैया, अब क्या होगा? आज लोगों के होंठ खुले है, कल हाथों मे लाठियाँ उठ जाये तो हम कहाँ जायेंगे?''

अष्टभुजा जी के चेहरे पर शिकन तक न थी।

वह बोले; ''चेले, ऐसा क्यों सोचते हो? अहिंसा को अहिंसा से

काटो। कभी हिंसा का माहौल ही न बनने दो। रही सफलता की बात, सो उसके हजार फार्मूले हैं।"

"लेकिन ऐसे में कौन-सा फार्मूला अपनायेंगे ?"

"परदेसी प्यारे, तूने अभी हमारा पिटारा नहीं देखा। एक-से-एक काले जादू हैं हमारे पास। हम चाहें तो अजगर को रस्सी बनाकर खूंटी पर लटका दें। और रस्सी से सागर-मंथन करवा लें।"

"पर सामने जो सागर पड़ा है, उसे कैसे मथेंगे ?"

"हम नहीं मथेंगे, प्यारे ! हम तो मात्र दर्शक रहेंगे, मथवायेंगे। अरे, सीधी-सी बात है। गांव के वरिष्ठतम् लोगों की अपनी समस्यायें होंगी ? किसी के बेटे को नौकरी चाहिए तो किसी को कोटा-परमिट और कुछ को नगद-नारायण का चक्कर होगा ?"

"हाँ, होगा।"

"तो ये मामले हम सुलझा लेंगे। और वरिष्ठतम् लोग अपने गाँवों का मतदान हमारे पक्ष में करवायेंगे।"

"परन्तु एक आदमी के बूते पर ? यह कैसे होगा ?"

"होगा परदेसी प्यारे, सब होगा। वरिष्ठतम् लोग 'बैक डोर' से सवर्णों को समझा देंगे कि देश मे हरिजनों का आतंक बढ रहा है। पिछडी जातियाँ भी इनके साथ हैं। इन्होंने जनता को अपने पक्ष में लेने के लिए सूरज की हत्या स्वयं करवा दी। और उसका कलंक एक सवर्ण नेता पर मढ़ दिया। क्योंकि इनके पीछे सी० आई० ए० का हाथ है। अगर ये अपना बहुमत बना लेंगे तो जल्दी ही देश अमरीकियों के हाथ में चला जायेगा। इसके लिए जरूरी है कि सवर्ण एक होकर किसी सवर्ण को जितायें। देश को गुलाम होने से बचायें। जयचन्दों का सिर कुचल दें। उन्हें राजनीति के दरवाजे पर फटकने भी न दें।...बस इतनी-सी बात। और सवर्ण हमारे साथ हो जायेंगे। सूरज का मामला भी लगे हाथ साफ हो जायेगा।"

अष्टभुजा जी मुस्करा उठे।

परदेसी जी ने कहा, "भैया, धन्य हो आप। बहुत दूर की कौड़ी लाते हो। वरन् हम भी कहें, इस आँधी-पानी में टिके कैसे हो ? लेकिन एक बात बताओ—हरिजन और पिछड़ी जातियों का वोट पाये बिना जीतोगे कैसे ?"

"अरे मूरख, उनका भी समर्थन ले लेंगे।"

"सो कैसे ?"

"देखो बात यह है कि गाँव में हरिजन और पिछडी जातियों के पास जमीने तो होती नही। बंजर तक सवर्णों के कब्जे में हैं। फिर उनकी रोजी-रोटी कैसे चलती है ?—सवर्णों के सहारे। वे किसकी जमीन पर पैर रखकर चलते हैं ?—सवर्णों की। फिर सवर्ण अगर चाहेंगे तो उनका वोट भी कहीं नहीं जायेगा। चुनाव के दिन गाड़ियाँ सवर्णों को सौंप दी जायेंगी। सवर्ण इन लोगो को उनमें भरकर मतदान केन्द्र के दरवाजों तक ले जाकर काम करा लेंगे।"

परदेसी जी हँस पड़े, "भैया, आप तो बिल्कुल बमभोले हो। अगर अन्दर जाकर ये लोग बदल गये तो ?"

"नहीं, बदलेंगे कैसे ? उनके जल्लाद तो बाहर खडे ही रहेगे। प्यारे, ये तुम्हारी तरह समझदार नहीं होते। अन्दर जो कुछ कर आयेंगे, बाहर उनके चेहरों पर लिखा हुआ मिलेगा। सो गुस्ताखी करने से पहले उसका अंजाम सौ बार सोचेंगे !"

"तो फिर यही फाइनल कर लें ?"

"और क्या ?" अष्टभुजा जी ने सहमति दे दी।

परदेसी जी गाँवों के वरिष्ठतम् लोगों की लिस्ट बनाने लगे।

उस लिस्ट में बिसेसर का नाम सर्वोपरि था।

□ □

बिसेसर को ऐसे ही मौके की तलाश थी।

पिछले कुछ वर्षों से वह अष्टभुजा जी के लिए एक घिसा हुआ मोहरा

उसके चरित्र का सर्टीफिकेट दूं । मुझे प्रतिशोध का एक मौका चाहिए ।"

और अब मौका सामने था ।

नशे में धुत्त अष्टभुजा शर्मा पूरी तरह नंगे हो गये । उन्होंने कुमुद की देह के सारे कपडे नोच डाले । फिर उसके साथ वह सब किया, जो खरीदी गयी लड़कियों के साथ कोई भी राष्ट्र-स्तम्भ करता है ।

कुमुद एक अपूर्व सन्तोष से उनके क्रिया-कलाप देखती रही । अष्टभुजा जी सम्पूर्ण रूप से निबट चुके तो उसने पूछा, "कहिये भूतपूर्व मन्त्री जी, मजा आया ?"

"मेरी जान, तुम हो और मजा न आये !" अष्टभुजा जी की आवाज लड़खड़ा रही थी । वे फर्श पर एक ओर लुढक गये ।

कुमुद ने उनके नंगे नितम्बों पर कसकर एक लात जमाई और फूट-फूटकर रो उठी ।

अष्टभुजा जी सारी रात कमरे में निर्वस्त्र पडे रहे ।...

सुबह बिसेसर ने कहा, "शर्मा जी, आजकल मुझ पर शनि की दशा चल रही है ।"

"क्यों, क्या हुआ ?" उन्होंने पूछा ।

"यह पूछिये, क्या नही हुआ ? बस जेल जाने वाला हूँ । मदन पांडेय की फसल-काड का मुजरिम हूँ मैं ।"

"बिसेसर बाबू छोड़िये । आप भी काम के वक्त इस पिद्दी-सी बात का रोना ले बैठे । पहले यह बताइये कि कल रात वाली वह तितली कौन थी ?"

"आपको पसन्द आयी ?" बिसेसर मुस्करा उठे ।

अष्टभुजा जी ने कहा, "मेरी पसन्द का क्या है बिसेसर बाबू ? आप मुहम्मद शाह रगीले हो । मैं तो आपकी पसन्द की दाद देता हूँ ।"

"तो मैं तो यही कहूँगा साहब कि आप फल खाइये । पेड़ पहचानने की बात मुझ सेवक पर छोड़िये ।"

अष्टभुजा जी ने दांत निपोर दिये, "सेवा करना तो कोई आप से

हो चुके थे। पर क्योंकि वे दोनों 'मौसेरे भाई' थे, अतः मौसम के दिनों में उनका मिलन स्वाभाविक था।

बिसेसर एक बार फिर चमक उठे।

वह अपने गाँव के अतिरिक्त देहात के अन्य हिस्सों में भी मतदान की राजनीति संचालित करने लगे। सम्पूर्ण क्षेत्र को चार भागों में बाँटकर उन्हें 'शशि बाबुओं' के हवाले कर दिया। समयानुकूल स्वयं भी हालात का जायजा लेते रहे।

उस दिन पहली बार अष्टभुजा जी ने बिसेसर के साथ देहात का दौरा किया। सवर्णों की आँखें खुल गयीं। उन्होंने कहा, "तो यह बात है? हम भी कहें, इन फुखमरों को इतनी समझ कहाँ से आ गयी? जरूर इनके पीछे विदेशी ताकतें लगी हैं। मगर यह तो भारतीयता का सवाल है। शर्मा जी आप निश्चिन्त रहिये। हम देश को डूबने नहीं देंगे।"

रात तक लौटे तो वे थककर चूर हो चुके थे।

अष्टभुजा जी ने पूछा, "बिसेसर बाबू, थकान उतारने के लिए भी कोई बन्दोबस्त है?"

"हाँ, है तो।"

"आप ने समझा नहीं। सिर्फ लाल परी से काम नहीं चलेगा।"

"अरे शर्मा जी, आप कहें और हम न समझें? हमारे गरीबखाने में गुड-चोकर ही तो है। इसी के पीछे तो हम महल नहीं खड़ा कर पाये। हम तो कहते हैं—क्या होगा महल-अटारी लेकर? बस ईश्वर इतना देता रहे कि आप जैसों की सेवा करता रहूँ।"

अष्टभुजा जी ने कहा, "बिसेसर बाबू, यह आपकी महानता है। आप किस कुबेर से कम हो?"

उस रात बिसेसर ने ईश्वर का दिया हुआ—कुमुद को अष्टभुजा जी की सेवा में अर्पित कर दिया। रतिक्रिया की एक रात कुमुद ने कहा था, "मेरे भाग्यविधाता, मैं तो आवारा हूँ। मगर मने में एक हसरत है कि अपने ब्रह्मचारी बाप के बिस्तर पर कभी एक रात गुजारूँ। और उसे,

उसके चरित्र का सर्टीफिकेट दूं। मुझे प्रतिशोध का एक मौका चाहिए।"

और अब मौका सामने था।

नशे में धुत्त अष्टभुजा शर्मा पूरी तरह नंगे हो गये। उन्होंने कुमुद की देह के सारे कपड़े नोच डाले। फिर उसके साथ वह सब किया, जो खरीदी गयी लड़कियों के साथ कोई भी राष्ट्र-स्तम्भ करता है।

कुमुद एक अपूर्व सन्तोष से उनके क्रिया-कलाप देखती रही। अष्टभुजा जी सम्पूर्ण रूप से निबट चुके तो उसने पूछा, "कहिये भूतपूर्व मन्त्री जी, मजा आया ?"

"मेरी जान, तुम हो और मजा न आये !" अष्टभुजा जी की आवाज लड़खड़ा रही थी। वे फर्श पर एक ओर लुढक गये।

कुमुद ने उनके नंगे नितम्बों पर कसकर एक लात जमाई और फूट-फूटकर रो उठी।

अष्टभुजा जी सारी रात कमरे में निर्वस्त्र पड़े रहे।...

सुबह बिसेसर ने कहा, "शर्मा जी, आजकल मुझ पर शनि की दशा चल रही है।"

"क्यों, क्या हुआ ?" उन्होंने पूछा।

"यह पूछिये, क्या नहीं हुआ ? बस जेल जाने वाला हूँ। मदन पांडेय की फसल-कांड का मुजरिम हूँ मैं।"

"बिसेसर बाबू छोड़िये। आप भी काम के वक्त इस पिद्दी-सी बात का रोना ले बैठे। पहले यह बताइये कि कल रात वाली वह तितली कौन थी ?"

"आपको पसन्द आयी ?" बिसेसर मुस्करा उठे।

अष्टभुजा जी ने कहा, "मेरी पसन्द का क्या है बिसेसर बाबू ? आप मुहम्मद शाह रंगीले हो। मैं तो आपकी पसन्द की दाद देता हूँ।"

"तो मैं तो यही कहूँगा साहब कि आप फल खाइये। पेड़ पहचानने की बात मुझ सेवक पर छोड़िये।"

अष्टभुजा जी ने दांत निपोर दिये, "सेवा करना तो कोई

सीधे बिसेसर बाबू ! बिल्कुल नहले पर दहला मारते हो।"

☐ ☐

देहात में सवर्णों की सभायें गुप-चुप होती रही। तय किया गया कि किस तरह हरिजन और पिछड़ी जातियों को अपने कब्जे में लेना है ! अगर ज्यादा कुछ हुआ तो हरिजनों को जिन्दा जला दिया जायेगा। क्योंकि भगत और आजाद के इन्कलाब की रक्षा करनी है।

रवीन्द्र शुक्ल का आन्दोलन तेजी से चल रहा था कि अचानक उसमें दरार आ गयी। उपस्थिति कम होने लगी। रवीन्द्र को अष्टभुजा जी के षड्यन्त्र की गन्ध मिल गयी। उसने सवर्णों को समझाने में एड़ी-चोटी का पसीना एक कर दिया। लेकिन एक भी पत्ता अपनी जगह से नही हिला।

रवीन्द्र शुक्ल चीखता रहा, "मूर्खों, इस अष्टभुजा की नीतियों से परिचित होकर भी तुम ऐसा सोच रहे हो ? लानत है तुम पर। एक अष्टभुजा के हारने से देश गुलाम नही होगा।"

सवर्णों ने कहा, "रवीन्द्र कल का छोकरा। उसे समझ नही है।"

इस तरह हरिजन और सवर्णों के अलग-अलग मोर्चे बनते रहे। हरिजन रवीन्द्र को समझाते रहे कि वे अपनी ओर से पूरी तरह अटल रहेंगे। सवर्णों का वोट ही कितना है ? लेकिन चुनाव के दिन वे अष्टभुजा जी की गाडियो में मतदान-केन्द्र जा रहे थे। और वहां से आँखे चुराये वापस लौट रहे थे।

रवीन्द्र आँखें फाड़कर उन्हें घूरता रहा।

चौधरी स्तम्भित थे।

☐ ☐

हमेशा की तरह अष्टभुजा जी चुनाव जीते। और भारी वोटों से जीते।

इस विजय की सर्वाधिक खुशी काका को हुई। उन्होंने काली-मन्दिर पर घी के दिये जलाये। पुजारी से घन्टों वार्ता करते रहे कि सत्य की सदैव जीत होती है। अष्टभुजा जी सत्य पर अडे हैं। उन्होंने, मुकदमे की

साथ विद्राह करने जैसा लगा।

रवीन्द्र इस बीच काका को समझाता रहा कि वे जिस 'आदर्श नायक' के लिए तुलसीदास का बेडा गर्क कर रहे हैं, वह बिसेसर का अभिन्न है। चोर, चोरों की जमात में ही शोभा पायेगा। अपने बन्धुओं के लिए प्रतिभा दिखायेगा। वह काका के लिए कुछ नहीं करेगा।

काका को इस बात में दम नजर आयी।

मगर शशि बाबू ने कहा, "पाण्डेय जी, ये तो चुनाव के फतवे हैं। देने पड़ते हैं। अष्टभुजा जी बिसेसर को नाराज कर अपने हाँथों पाँव में कुल्हाड़ी मार बैठेंगे। क्योंकि उसका देहात में रोब-दाब है। चुनाव जीतने के बाद कौन-किसका होता है? किसके अष्टभुजा? और कौन बिसेसर? दोनों में वैसे ही वर्षों बोल-चाल बन्द रही। लेकिन आप जो उसके लिए शहीद हो रहे हो, अष्टभुजा कैसे भूल सकता है? आप भगवान के नाम पर लगे हो। आप को भूलकर कोढ़ी नहीं हो जायेगा वह?"

"सो तो है।" काका विश्वस्त हुए।

"तो फिर शंका मत करो। शंका पाप का मूल है। और फिर मैं किस मर्ज की दवा हूँ? ऐसा चक्कर चलाऊँगा कि पासा आपके हिस्से में पलट जायेगा।"...

चुनाव के दिन काका सुबह मन्दिर के चबूतरे पर कुंडली मारकर बैठ गये। उन्होंने देवता के चरणों मे प्रसाद चढाया। मतदाताओं की गाड़ी जैसे ही उधर से गुजरती, काका सबको प्रसाद वितरित [illegible] "पान करने से पूर्व वचन दो कि रघुवंश-मणि की लाज र[illegible]

और अब रघुवंश-मणि के चरण लखनऊ की ओर

काका ने अष्टभुजा जी से भेंट की। उन्हें अपने [illegible] दिलायी, "प्रभो, हमने जी-जान से आप का मंगल [illegible] मंगल आपके हाथ है।"

अष्टभुजा जी ने कहा, [illegible] कुछ

मंगल तो तब होगा, जब आपका मंगल हो। हिम्मत रखिये। मैं पूरी ताकत लगा दूंगा।"

काका आकंठ कृतज्ञता में डूब गये।

इस तरह श्रमदान, गरीबी हटाओ, नवनिर्माण लाओ—जैसी झंझटों से उबरकर अष्टभुजा शर्मा शीघ्रता से आगे बढ़ गये। क्योंकि उनका समय अमूल्य था। वे राष्ट्र-निर्माता थे। और राष्ट्र दारुलसफा के एक कमरे में बैठा, उनके मजबूत कन्धों के लिए बड़ी बेसब्री से इन्तजार कर रहा था।

□

साथ विद्रोह करने जैसा लगा ।

रवीन्द्र इस बीच काका को समझाता रहा कि वे जिस 'आदर्श नायक' के लिए तुलसीदास का बेड़ा गर्क कर रहे हैं, वह बिसेसर का अभिन्न है । चोर, चोरों की जमात में ही शोभा पायेगा । अपने बन्धुओं के लिए प्रतिभा दिखायेगा । वह काका के लिए कुछ नही करेगा ।

काका को इस बात में दम नजर आयी ।

मगर शशि बाबू ने कहा, "पांडेय जी, ये तो चुनाव के फतवे हैं। देने पड़ते हैं । अष्टभुजा जी बिसेसर को नाराज कर अपने हाँथों पाँव में कुल्हाड़ी मार बैठेंगे । क्योंकि उसका देहात में रोब-दाब है । चुनाव जीतने के बाद कौन-किसका होता है ? किसके अष्टभुजा ? और कौन बिसेसर ? दोनों में वैसे ही वर्षों बोल-चाल बन्द रही । लेकिन आप जो उसके लिए शहीद हो रहे हो, अष्टभुजा कैसे भूल सकता है ? आप भगवान के नाम पर लगे हो । आप को भूलकर कोढ़ी नहीं हो जायेगा वह ?"

"सो तो है ।" काका विश्वस्त हुए ।

"तो फिर शंका मत करो । शंका पाप का मूल है । और फिर मैं किस मर्ज की दवा हूँ ? ऐसा चक्कर चलाऊँगा कि पासा आपके हिस्से में पलट जायेगा ।"···

चुनाव के दिन काका सुबह मन्दिर के चबूतरे पर कुंडली मारकर बैठ गये । उन्होंने देवता के चरणों मे प्रसाद चढाया । मतदाताओं की गाड़ी जैसे ही उधर से गुजरती, काका सबको प्रसाद वितरित करते । कहते, "पान करने से पूर्व वचन दो कि रघुवंश-मणि की लाज रखोगे ।"

और अब रघुवंश-मणि के चरण लखनऊ की ओर अग्रसर होने को थे ।

काका ने अष्टभुजा ज़ी से भेंट की । उन्हे अपने मुकदमे की याद दिलायी, "प्रभो, हमने जी-जान से आप का मंगल किया । अब हमारा मंगल आपके हाथ है ।"

अष्टभुजा जी ने कहा, "पाडेय जी, यह तो कुछ नही है । हमारा

मंगल तो तब होगा, जब आपका मंगल हो। हिम्मत रखिये। मैं पूरी ताकत लगा दूंगा।"

काका आकंठ कृतज्ञता में डूब गये।

इस तरह श्रमदान, गरीबी हटाओ, नवनिर्माण लाओ—जैसी झंझटों से उबरकर अष्टभुजा शर्मा शीघ्रता से आगे बढ़ गये। क्योंकि उनका समय अमूल्य था। वे राष्ट्र-निर्माता थे। और राष्ट्र दारुलसफा के एक कमरे में बैठा, उनके मजबूत कन्धों के लिए बड़ी बेसब्री से इन्तजार कर रहा था।

□

काका अब फिर चौराहे पर थे।

वकील कालका प्रसाद ने मुकदमे के कागजात इस तरह जमकर तैयार किये कि प्रतिवादी के हौसले पस्त हो गये। फैसले की तारीख अब सिर पर थी। बस, गवाहों के बयान और बहस का सिलसिला खत्म होते ही परिणाम आने वाला था। कालका प्रसाद ने काका को हिदायत दी कि उनके गवाह कारगर होने चाहिए, जो मौक-ए-वारदात पर अपनी उपस्थिति साबित कर सकें और वादी के वकील को निरुत्तर कर दें।

काका बहुत प्रसन्न थे कि अब युद्ध का अन्तिम चक्र है। दुश्मन उनकी आँखों के समक्ष दम तोड़ता हुआ, अपने अपराध के लिये हजार मौतें मरेगा। काका एक बार फिर गाँव की चौहद्दी में अपनी शौर्य-कथा रूपायित करने लगे। लोगों ने कहा, "पाडेय जी, अब रणक्षेत्र से हटना नही। तुम अगर बोटी-बोटी कट जाओ तो हथियार हम उठायेंगे। मानवता दब नही सकती।"

काका फूल गये।

तारीख की पूर्व शाम उन्होंने लोगों के दरवाजे खटखटाये। दरवाजे

अचानक बन्द होने लगे। किसी को उस दिन जरूरी काम से बाहर जाना था तो कोई अपने मकान की मरम्मत में व्यस्त था। कुछ लोग एकाएक जुकाम होने से लाचार थे।

काका घबरा उठे। उन्होंने शशि बाबू से बात की तो वह बोले, "गवाहों का क्या है ? कचहरी चलो, वहाँ बहुत से पेशेवर मिल जायेंगे।"

उस दिन कचहरी में शशि बाबू एक नकचढ़े को ढूँढ लाये। उसने सौ-सौ के दो नोट लिये और कालका प्रसाद के सामने उपस्थित हुआ। कालका प्रसाद ने उसे घटनाओं का पूरा विवरण सुनाया। जिरह समझायी और जब 'ट्रायल' के लिए उससे सवालात किये तो वह मदन पांडेय की जगह जगन पांडेय और जगन पाडेय की जगह छगन पांडेय कहकर जवाब देता रहा।

कालका प्रसाद ने पूछा, "हाँ तो उस खेत में कौन-सी फसल थी ?"

"गेहूँ था, नही चना। साब बाजरा रहा होगा।" गवाह ने कहा।

कालका साहब ने उसे एक बार फिर सारी बात समझायी। कई बार बताया कि वह स्थिति को अच्छी तरह जान ले और यह गलती न करे कि उस गाँव से उसके रिश्ते पर ही शक होने लगे। गवाह 'जी हुजूरी' में सिर हिलाता रहा। लेकिन अन्त तक उसकी जुबान से जगन और मगन पांडेय का भूत नही उतरा।

हारकर वकील ने उस दिन अर्जी दे दी। और गवाही के लिए अगली 'डेट' माँगी।

काका गाँव लौट आये। उन्हें किसी दूसरे गवाह की तलाश थी, जो उस गाँव से सम्बन्धित हो और काका तथा बिसेसर को अच्छी तरह जानता हो। गाँव के लोगों ने मुकदमे का हाल पूछा। और आश्वासन दिया कि वे अगली तारीख पर बयान देने अवश्य चलेंगे।

और अगली तारीख पर काका ने पड़ोसी को आवाज दी। उसने कहा, "भैया, जुकाम तो ठीक है। लेकिन पाँव के जोड़ो में दर्द है। मैं नही जा सकूँगा।"

काका गुस्से से भर उठे, "सीधे क्यों नहीं कहते कि गवाही देने से डरते हो !"

"तो तुम्हारे लिए हम अपनी टाँग तुड़वा लें ?" पड़ोसी बोला, "मेरी मानो तो बिसेसर से समझौता कर लो। पूरे देहात में कोई गवाह नहीं मिलेगा तुम्हें। सबको अपनी जान प्यारी है।"

काका निहत्थे हो गये। उन्होंने पूछा, "शशि बाबू, क्यों नहीं आप ही गवाह बन जाते ?"

शशि बाबू मजबूर हो उठे, "पांडेय जी, मैं आपके लिए सब कुछ कर सकता हूँ। मगर बिसेसर मेरा रिश्तेदार ठहरा। सामने से बन्दूक कैसे चलेगी मुझसे ?"

"तो रवीन्द्र को ले लें ? वह बिसेसर के गाँव का ही है।"

"रवीन्द्र नेता आदमी है। राजनीतिकों का चक्कर ठीक नहीं रहता। क्या पता वक्त पर बदल जाये !" शशि बाबू ने यह अस्त्र भी बेजान साबित कर दिया।

काका हतोत्साहित थे। यह कैसा न्याय है, जो इस बैसाखी पर टिका है, कि अँधेरी रात में गाँव से दूर उस बीराने में, कोई उनका पक्षधर उस घटना का दर्शक भी था ? दर्शक होता तो यह घटना ही कैसे संभव थी ? मगर कालका प्रसाद ने कहा था, "पांडेय जी, ये कानून की बन्दिशें हैं। गवाह यह नहीं कहेगा तो मुकदमा आपके पक्ष में जा ही नहीं सकता।"

काका अपने प्रयास में लगे रहे। पर एक ओर हाथों में लाठियाँ लिये खूँखार भीड़ का सिलसिला था। और दूसरी ओर एक मानसपाठी—शब्दों के सहारे कई युगों को तोलता। युग को मोड़ता।

यकीनन लाठियों के सामने शब्द शक्तिहीन थे।

काका कई दिनों तक तनाव में रहे।

...और सहसा गाँव में यह खबर बड़ी तेजी से फैली कि तूफ़ानी पहलवान का बिसेसर से मनमुटाव हो गया है। उनकी बैठक में चुटकुलों

के बीच हाथापाई तक की नौबत आ गयी। तूफानी एक बार गर्दन पकड़कर उठा लेता तो बिसेसर घूरे पर जाकर गिरते। बात उसने ही सम्हाली, "बिसेसर बाबू, जाओ एक बार अदब से छोड़े दे रहा हूँ। अगली बार के लिए अपनी जाँघों पर तेल मलकर रखना। अखाड़े में उतरकर निबट लेंगे।"

बिसेसर दर्जनों गालियाँ सुनाते रहे। वह चुपचाप चला गया।...

शशि बाबू तूफानी पहलवान को पकड़ लाये। उसने कहा, "पाडेय बाबा, चलो तुम्हारे केस मे गवाही मैं दूँगा। बहुत मौके पर बिसेसर ने साँपों को छेड़ा है। अब हम भी देखेंगे, किस महल में सिर छिपाते है!"

"सब ऊपर वाले की महिमा है गुरुदेव!" शशि बाबू चहके, "देखो, भक्त की लाज रखने के लिए उसने क्या रंग दिखाया!"

काका ऊपर वाले के रंग से बहुत चमत्कृत हुए।

तारीख की पूर्व शाम, तूफानी पहलवान ने शहर जाकर काका से फिल्म देखी, अच्छे होटल में खाया, कालीनगंज तक जाकर धोती ढोली कर आया। शशि बाबू का कहना था कि पहलवान शेर आदमी है। काम लेने के लिए उसके आगे गोश्त डालना ही पड़ेगा।

दूसरी सुबह वह जज के सामने था।

प्रतिवादी के वकील ने उसे गीता दिखाते हुए कहा कि वह छूकर शपथ ले। उसने कहा, "राजन, जिन्दगी में पहली बार सच बोलने निकला हूँ। चाहे जो छुवा लो।"

"तुम्हारा नाम?"

"नाम तो मेरा तूफानी यादव है हजूर, लेकिन पब्लिक मुझे पठ्ठा कहती है।"

"मदन पांडेय से तुम्हारा क्या सम्बन्ध है?"

"सम्बन्ध तो बहुत गहरा है हजूर। वे मेरे पुरोहित हैं। मेरे भगवान् हैं।"

"और बिसेसर से?"

"बिसेसर से मेरी लड़ाई है। अभी हफ्ते भर पहले की बात है हजूर, सिर फुटौवल होते-होते बची।"

"तो बिसेसर से तुम्हारे सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं?"

"हाँ हजूर!"

"फिर सच कैसे बोलोगे?"

"क्या कह रहे हैं हजूर? लँगोट-कसम, आपकी दया से सेहत अच्छी है। झूठ किस डर से बोलूँगा?"

"तुमने मदन पांडेय की फसल देखी थी?"

"देखी थी हजूर! खूब देखी थी। अरे, जब वह गदराई थी तो पुरोहित बाबा के गुन की तारीफ उनके मुँह पर कर आया था मैं। पुरोहित बाबा बहुत खुश हुए। धान कटा तो खलिहान में बुलाकर उन्होंने दस किलो मुझे भी दिया था। कहने लगे—तूफानी, तुम लँड़ूरे आदमी हो। ले जाओ, बच्चों को भात खिलाना। हजूर, मैंने बहुत कहा कि ब्राह्मण देवता का लेने से पाप लगेगा। मगर पांडेय बाबा ने तो मेरे कन्धे पर लाद ही दिया, हजूर! क्या करता?"

"लेकिन वादी का कहना है कि उसकी फसल बिसेसर सिंह ने चोरी से काट ली। और उस घटना के तुम चश्मदीद गवाह हो।"

"राम-राम हजूर! ऐसी बात सुनकर तो कान दुख रहे हैं। बिसेसर मेरे दुश्मन जरूर हैं। लेकिन चोर-उचक्के नहीं। हजूर, देहात भर में पुछवा लो। उनका तो खुदै बीस-बिगहवा में छाती तक धान लगा था।"

"तुम्हें और कुछ कहना है?" वकील का आखिरी सवाल था।

तूफानी ने कहा, "मैं क्या कहूँ? आप आला-अफसर हो। सारी बात समझते हो हजूर!"

इसके बाद। बिसेसर ने एक-एक कर अपने गवाहों के बयान कराये। अलग-अलग शब्दावली में सबने यही कहा कि बीस बिगहवा में उनका धान खूब अच्छा था। भला वे चोरी क्यों करेंगे?…और यह कि उन्होंने स्वयं मदन पांडेय को खलिहान में धान पीटकर घर ले जाते देखा था।

काका के ऊपर वज्रपात-सा हुआ। उन्हे सबसे बड़ा दुख यह था कि कालका प्रसाद ने बिसेसर के गवाहो से कोई जिरह नहीं की। और झूठ को सच साबित होने दिया। क्या बिसेसर ने कालका को भी खरीद रखा था ?

अदालत से निकलते हुए सबके अपने तर्क थे। कालका प्रसाद ने कहा, "पाडेय जी, तुम्हारा गवाह गलत निकला। मैं क्या करता ?"

तूफानी बोला, "मुझे क्या मालूम था कि गीता छुवाकर कसम धरायेंगे। नही तो यहाँ क्यो आता ?"

काका रास्ते भर चुप रहे। उन्हें कुछ समझ मे न आया कि यह क्यों और कैसे हो रहा है ! शशि बाबू पहले की तरह जिन्दादिल थे, "इस तरह उदास मत हो, यार ! कुछ हँसो-बोलो। ऐसे ही किसी के कह देने से जज मान नही लेगा कि तुम अपना धान कटवाकर घर ले गये। और फिर चार हजार किस लिए दिया है उसे ? इसीलिए न कि फैसला आप के पक्ष में करे !"

"सो तो है।" काका वैसे ही उदास रहे।

"तो फिर रो क्यो रहे हो ?" शशि बाबू ने कहा, "फैसला हो जाने दो। फिर बैठकर जी भर रो लेना। यार, तुमने तो मुझे डंडा कर दिया।"

"क्या किया मैंने ?" काका पहली बार उनसे रूखे हुए।

"करोगे क्या ? मेरी जान लोगे ?"

"मैं आपकी जान ले रहा हूँ ?"

"और नही तो क्या ? मुँह तो ऐसे फुलाये हो, जैसे मैंने ही सब गडबड़ किया हो ! लोग तो वैसे ही कहने को तैयार हैं कि मैंने ले जाकर आपको फँसा दिया। ऊपर से आपका भी यह रवैया है ?"

...काका मना करते रहे। मगर शशि बाबू उन्हें जबरदस्ती अपनी बैठक तक खींच ले गये। वह समझाते रहे कि काका को उन पर शक नहीं करना चाहिए। अभी तो फैसला होना बाकी है। यह तो जुए का खेल

है। कभी चित्त, कभी पट। मगर विजयश्री उसी को मुबारक होती है, जो अन्तिम समय तक दाँव चलता रहे।

काका सिर हिलाते रहे। शशि बाबू न्यायाधीश वर्मा के क़िस्से सुनाते रहे कि वह किन-किन मुक़दमों में, गवाहों के बयान के विपरीत फैसले देकर, कितना कमा चुका है! "अरे यह वर्मा भी महाचाटू अफ़सर है।" शशि बाबू ने रहस्य खोला।

काका प्रसन्न होकर घर लौटे थे कि उन्होंने जज को चटाने का सुअवसर हाथ से जाने नहीं दिया।

□ □

मगर यह हथकंडा भी बेकार गया।

फ़ैसले में जज वर्मा ने लिखा कि गवाहों के बयान को देखते हुए यह साबित होता है कि प्रतिवादी बिसेसर सिंह एक प्रतिष्ठित और इज्जतदार आदमी है। उसने कोई चोरी नहीं की।...लिहाजा उसे बाइज्जत बरी किया जाता है।...

काका आँसुओं में डूब गये।

माँ दहाड़ मारकर रोने लगी। एक हृदय-विदारक मौत-सी घर में पसर गयी। शशि बाबू घर-घर घूमकर सफ़ाई देने लगे कि आजकल जमाना ख़राब है। कोई किसी का नहीं होता। अदालत में धन-धर्म दोनों चला जाता है। ये कल के जज ससुरे! इनकी चले तो उल्टा मदन पाडेय को ही फाँसी पर लटका दें। वह तो कहो कि अपने ऊपर अष्टभुजा जी का हाथ था। कुछ बिगाड नहीं पाये। नहीं तो पता नहीं क्या करते!...

लोग शशि बाबू की बातों से हैरान थे। कुछ ने उनके कथन पर सिर हिलाया तो कुछ लोगों ने उसे और भी विस्तार दिया। लेकिन बहस के नितान्त गोपनीय क्षणों में लोग सच्चाई को उजागर करने से न चूके। किसी ने कहा—शशि बाबू के पास ऐसा मंत्र है कि दुश्मन अपना छुरा, अपने ही हाथों, अपने पेट में घुसेड़ लेता है। किसी ने कहा—जज की कोई गलती नहीं, शशि बाबू तूफ़ानी को बिसेसर से लड़वाने का नाटक

कर दाँव खेल गये। और चुनाव के दिनों में काम आये हुए एक लड़के ने बताया कि इस मुकदमे के लिए अष्टभुजा जी और जज वर्मा के बीच सौदा तभी हो चुका था, जब वर्मा उन्हें विजय की बधाई देने पहुँचे थे।

वर्मा ने पूछा था, "क्यों शर्मा जी, अबकी क्या इरादा है?"

"अबकी फिर इंका में चले जायेंगे, यार! यह मन्त्री-पद की कुर्सी तो हमारी महबूबा है। उसके बिना दिल नही लगता। मगर तुम्हारा क्या इरादा है? मैं तुम्हें हाईकोर्ट में बिठाना चाहता हूँ। जाओगे?"

"परवरदिगार, हम तो आपके सेवक ठहरे। जहाँ भी बिठाओगे, सेवा करते रहेंगे।"

"वर्मा, तुम्हारे पास कोई मदन पांडेय की फसल-कांड का मुकदमा है? उसमें मुजरिम अपना आदमी है—बिसेसर। बेचारा भला मानुष है। सुना है, सारे सुबूत उसके खिलाफ हैं?"

"तो क्या हुआ? मुकदमा तो मेरे ही पास है!"

और अष्टभुजा जी बताने लगे कि न्यायाधीश की कुर्सी बहुत जिम्मेदार जगह होती है। गलत आदमी को बिठाने से अपना ही गला कस जाता है। उन्होंने पिछला सारा रिकार्ड सुनाया कि हाईकोर्ट के लिए किन-किन न्यायाधीशों का चुनाव राजनैतिक बूते पर हुआ! मगर कुर्सी पर बैठते ही वे शासन के खिलाफ निर्णय देने लगे।

"यार, तुम्हे कैसा लगेगा, यदि तुम्हारा कुत्ता तुम्ही पर गुर्राये?"

"बहुत बुरा लगेगा, साहब!" वर्मा ने छूटते ही उत्तर दिया।

"तुम तो ऐसा कुछ नही करोगे?"

वर्मा साहब ही-ही हँस पड़े, "कैसी बात करते हैं शर्मा जी?"

"खैर, रस्सी तो तुम्हारी हमारे ही हाथ में रहेगी।" अष्टभुजा जी भी हँसने लगे।

फिर वे देर तक इस बात पर बहस करते रहे कि अब युधिष्ठिर बनने के दिन लद गये। ईमानदारी से समझदारी अधिक जरूरी है।...

□ □

पड़ोसी के घर तिलक थी।

सारा गाँव एकत्र होकर उत्सव की शोभा बढ़ा रहा था। काका बिस्तर पर पड़े थे। जैसे वर्षों से बीमार हों। अथवा उनका इकलौता बेटा ईश्वर को प्यारा हो गया हो। जिन्दगी की हर-गतिविधि से वीत-राग हो गया हो। रसोईघर में बर्तन औंधे पड़े थे। चूहे मुँह डालकर लौट जाते थे। माँ की आँखों में एक सागर सूख चुका था। माथे की लटें कँटीले जगल-सी छितराई हुई थी। होंठों पर एक गूँगापन था। और कुछ बेमतलब हरकतें थी, जिन्हें देखकर कोई भी सुविधा से कह सकता था कि इन्हें आगरा-राँची जाने की जरूरत है।

उत्सव के बीच काका की चर्चा थी। पड़ोसी हथेलियाँ बजाकर बता रहा था, "यारो, ऐसा भी क्या दुःख ? यह तो सरेआम नाटक है। न आना था तो मदन साफ कह देता। बहाने की क्या जरूरत ? खैर मैं भी गाँव में ही रहूँगा। मर भी गया तो कन्धा देने नही जाऊँगा। यारो, ताली एक हाथ से नही बजती।"

शशि बाबू काका को बिस्तर से खीच ले गये, "महराज, ऐसा शोक मत मनाओ कि दूसरे के शुभ पर जाकर खडे भी न हो सको! लोग तुम्हें थूक रहे हैं। और शोक भी आखिर किस लिए ? अभी कितनी अदालतें पड़ी हैं। बिसेसर को हाईकोर्ट तक नचाऊँगा मैं। न्याय आपके ही हाथ रहेगा।"

"नही शशि बाबू!"- काका सिसक उठे, "अब मुझे किसी अदालत में नही जाना है।"

"इतना दिल छोटा करोगे ?"

"और क्या करूँ ?"

"लेकिन उसके मौके पर तो जाकर खडे हो जाओ!"

काका ने धोती के छोर से आँखें पोंछ ली। और पडोसी के घर जाकर एक कोने में बैठ गये। वहाँ लोगों में इस बात को लेकर खबर

गर्म थी कि बिसेसर आज कचहरी गये हैं—मदन के खिलाफ इज्जत और हर्जा-खर्चा का दावा करने।

काका को एक और जबरदस्त सदमा लगा। वे कराह उठे, "हे राम, इस चमड़ी से तो एक भी पैसा निकलने से रहा। अभी कितनी जगह और मारोगे ?"

गाँव वाले शादी की उपयुक्तता पर बहस करने लगे कि जैसा लड़का, वैसी लड़की। बिल्कुल राम-सीता की जोड़ी है। क्यों न हो आखिर ? आजकल तो लड़के शादी से पहले लड़की देख आते हैं। लड़की वाले भी होशियार हो गये हैं। हमेशा बराबर की जोड़ी रचाते हैं। नहीं तो क्या पता, कब कोई इन्कार कर दे ? और हमेशा के लिए लड़की पर दाग लग जाये। लोगो ! वह भी एक समय होता था कि शादी तय हो गयी। ब्याहने जा पहुँचे, बाजे-गाजे के साथ। और फेरे पड़ते समय मंडप में लड़की का पैर निहारते रहे कि गोरी है या काली ?

औरों की बात छोड़ो। यही मदन बाबा हैं। इनके ब्याह के समय जैसे ही लड़की मंडप में आयी, लोग तो डील-डौल ही देखकर हँस पड़े। सबने कहा कि बिल्कुल दूल्हे की अम्मा है। ब्याह के बाद दूल्हन जब गाँव आयी तो मदन बाबा की माँ उसे डोली से उतारते ही भड़क उठीं। पति से बोली—भैंस लाने की तमन्ना पूरी हुई तुम्हारी। अब बैठकर दुहो। महीनों तक इन्होंने दूल्हन का मुँह भी नहीं देखा। बहुत दिनों तक तो मदन बाबा अम्मा-बाबू की ओर निहारते रहे। लम्बी-चोड़ी पंडिताइन बिल्कुल पाठा थी। अखाड़े की जीव। गामा पहलवान को भी मिनटों में चित्त कर दें। और मदन बाबा तो एकदम बच्चे थे। काँख में दबा लें तो चें-चें करते फिरें।"

"मगर पंचो ! मदन बाबा भी कमाल के 'चिपकू' निकले। ऐसे आशिक हुए, ऐसे आशिक हुए कि बस पूछो मत ! जादू चल गया इनका पंडिताइन पर। बिल्कुल चिड़िया की तरह हुक्म मानती थी इनका।"...

"औरों की तो खूब उड़ा रहे हो।" काका बोल उठे, "तुम्हारा भी

हाल बता दें कि जब तुम्हारी भैंस आयी थी तो क्या-क्या नजारे दे उसके ?''

माहौल कहकहों में डूब गया ।

अचानक हाथ में लाठी लिये अमीन का चपरासी आ पहुँचा । काका को सवालिया आँखों से देखते हुए, उसने कहा, ''साहब ने बुलाया है । चलो, शान्ति बाबू के दरवाजे पर है ।''

''मगर इस वक्त ?'' काका को अटपटा लगा ।

''हाँ, इसी वक्त !''

लोग स्तब्ध हो गये । फुसफुसाहटें चल निकलीं ।

अमीन साहब स्वयं आ पहुँचे । बोले, ''रहने दो पंडित जी ! आपको इस मौके पर छेड़ना उचित नहीं । हाँ, आपके भले के लिए इतना बता दूँ कि आपने बैंक से जो कर्ज लिया था, उसकी एक भी किस्त अभी तक जमा नहीं हुई । कुर्की का वारण्ट है । एक सप्ताह के भीतर रुपये जमा कर दो । नहीं तो आपका घर नीलाम हो जायेगा । फिर मत कहना कि मैंने बताया नहीं ।''

अमीन साहब जा चुके थे । उनके पीछे लाठियाँ पटकता चपरासी भी । भरी सभा में काका की चीर खींच ली गयी । कोई कृष्ण नहीं आया ।

काका नाश्ते की प्लेट, बिना खाये छोड़कर घर आ गये । लोगों का दूल्हा-दुल्हन प्रसंग कर्जखोरी के घृणित किस्से में डूब गया । जितने मुँह, उतनी बातें ।

उन्होंने कहा, ''भैया, इसे कर्ज कहते हैं । लेते समय तो अच्छा लगता है । लेकिन देते समय पता चलता है ।''

उन्होंने कहा, ''मदन दस नम्बरी बेईमान है । आज तक किसी का कर्ज लौटाया है इसने ? सरकार से भी पैंतरे भाँजकर निकल जायेगा ।''

उन्होंने कहा, ''ऐसे ही होता है । बुरे दिन आते हैं तो आदमी का परोपकार भी उसका पाप साबित हो जाता है । भगवान किसी को शशि-

बाबू के चक्कर में न फँसाये। बेचारा मरते समय पानी भी नही माँग पायेगा।"

□ □

बात मिनटों में गाँव भर में फ़ैल चुकी थी।

मगर शशि बाबू काका से पूछने नहीं आये। अन्ततः काका ही रात उनकी बैठक में गये।

"शशि बाबू, कुछ सुना आपने ?"

"अरे तो इसमें परेशान होने की क्या बात है ?" शशि बाबू का निश्चिन्ततापूर्ण जवाब था !

"बाबू, मेरा घर नीलाम हो जायेगा।" काका ने लगभग रो दिया।

"देखिये गुरुवर ! होनी को कौन टाल सकता है ?"

"लेकिन अगर आप कुछ रुपयों की व्यवस्था कर दें तो...।"

शशि बाबू बीच मे ही बोल पड़े, "प्रभु, मैं आपके लिए कब तक रुपयों की व्यवस्था करता फिरूँगा ? वैसे भी अब तक दस हजार आप पर फूंक चुका हूँ। अब तो बहुत तंगी मे हूँ। रही मकान की बात, तो हो जाने दीजिए—जो कुछ होता है। मैं अपने मकान का बगल वाला हिस्सा आपके लिए खाली कर दूंगा।"

काका को जैसे बिजली का झटका लगा हो, "शशि बाबू, आप यह क्या कह रहे हैं ? मैं अपना मकान नीलाम हो जाने दूं ?"

"अरे तो क्या हुआ ? मैं आपके रहने की व्यवस्था तो कर ही रहा हूँ।"

काका उठ चले, "शशि बाबू, मैं सब समझ गया।"

"क्या समझ गये आप ? जाइये, समझते रहिये। अब आपके लिए रुपयों का पेड़ तो है नही मेरे पास। मैंने जितना आपके लिए किया और कर रहा हूँ, उतना खुदा के लिए भी नही करता। ऊपर से आप धमकी दे रहे हैं मुझे !" शशि बाबू का तेवर था।

काका जूते-पिटे चेहरे से घर लौटे।

उस रात वह माँ पर बड़बड़ाते रहे। बैल को डंडों से पीटते रहे। दीवार से छिपकलियाँ खदेड़ते रहे। और अन्त में बैठकर हाँफने लगे। माँ को बुलाया, रज्जू, इधर तो आ !"

माँ जैसे ही आयी, काका ने उनके बूढे जिस्म को बाँहों में भर लिया। और गालों पर चुम्बनों की बौछार कर दी, "रज्जू, तू अब भी कितनी ख़ूबसूरत है, जैसे आज ही ब्याहकर आयी हो !"

माँ घबरा उठी, "आप कैसी हरकतें कर रहे हैं ! लगता है, किसी भूत ने छू दिया है आपको !"

"भूत ने छू दिया ?" काका हँसने लगे, "देखो, वह रहा भूत।"

उन्होंने दीवार पर लगी हुई मेरी तस्वीर की ओर उँगली उठायी, "नालायक कैसा टकर-टकर देख रहा है ! शर्म भी नहीं आती, माँ-पिता को ऐसे में घूरते हुए।"

काका मेरी बेशर्मी का तर्क दे रहे थे। उल्टे माँ शरमा गयी।

उन्होंने कहा, "रज्जू वह तस्वीर तो लाना।"

और वे अपना प्यार मेरी तस्वीर पर न्योछावर करने लगे। तस्वीर को कई कोणों से निहारा। छाती से लगाया। पूछा, "तुम्हें शरत की की याद नहीं आती, रज्जू ? सचमुच राजकुमार लगता है रे ! वह तो कहो, तेरी कोख से पैदा हो गया। नहीं तो किसी साहब-सूबा के यहाँ हुआ होता तो कहीं बैठा राज चला रहा होता।"

काका ने उस रात मुझे खत लिखा। अपनी स्थितियाँ बयान कीं। और आग्रह किया कि मैं घर आकर मामलों को निबटा लूँ। मैं जो भी हूँ, अन्ततः उनका ख़ून हूँ। और अपने ख़ून के लिए वक़्त-बेवक़्त की कहा-सुनी का कोई अर्थ नहीं होता।

सुबह शहर जाकर उन्होंने मुझे तार भेजा। और उँगलियों पर दिन गिनने लगे।

तीसरे दिन काका स्टेशन जाकर गाड़ियाँ निहार रहे थे।

□ □

मैं गांव आ गया।

गांव—जिसकी पगडंडियों पर मेरा राजपथ था। जहां मौसम की मार से छप्पर तार-तार हो उठते और मैं पूजा में लगे हुए वन्दनवारों के एहसास से नहा उठता था। गांव—जिसका वंशज मैं, शहरों में अपना संरक्षक तलाशता फिरा।

मैंने काका के पैर छुए तो वह लाज से सिकुड़ गये। जैसे किसी महामानव ने उनके साथ यह ज्यादती कर दी हो।'''

काका पिछले वर्षों के गुजरे हुए दिन बताते रहे। किस्से सुनाते रहे कि वे किन-किन जगहों पर, किस तरह पूर्व-निर्धारित योजनाओं के अनुसार छले गये! और यह भी कि आदमी अपनी सन्तान को हमेशा एक निर्माता की दृष्टि से देखता है। वह मरते दम तक अपने निर्माण का संशोधन करता है। और भूल जाता है कि अपनी ही कृति वक्त के साथ इतनी जीवन्त हो उठती है कि उसके सामने, उसका निर्माता स्वयं बौना हो जाता है। वह इस स्थिति को मानने से इन्कार कर देता है। फिर ऐसे में वही होता है, जो उनके और उनके बच्चों के बीच हुआ। पर काका प्रसन्न थे कि एक सफल कृतिकार की तरह उन्होंने मरने से पहले यह रहस्य समझ लिया।

मैं काका को आश्वस्त करता रहा कि वे निश्चिन्त रहें। कल बैंक जाकर कर्ज की राशि अदा कर आऊँगा।

सहसा शशि बाबू प्रकट हुए। उन्होंने जमाने की रफ्तार और मेरे विरोधी स्वभाव की बहुत प्रशंसा की। उनका कहना था कि इस युग मे भी दशरथ-पुत्रों की कमी नहीं है। वे कलयुग मे भी पिता के आदेश पर जंगल जा सकते हैं। फूस की झोपड़ी में रहकर भी अपने आदेशकर्ता के चरणों पर सिर झुका सकते है। जिसका मैं जीता-जागता उदाहरण हूँ।

शाम को मैं शशि बाबू की बैठक में था। वहाँ मेरे स्वागत की जितनी तैयारियाँ थी, देखकर लगा कि जैसे मैं किसी नवाबी खानदान में आ पहुँचा हूँ, और स्वयं भी एक नवाब हूँ। नाश्ते के दौर में वह बताते रहे कि जिन्दगी मे पहली बार उन्हें इतनी तंग हालत से गुजरना पड़ रहा है। नही तो वह स्वयं मामले को निबटा लेते। लेकिन मैं बड़े वक्त पर आ गया हूँ।

शशि बाबू मेरे स्वभाव का यशगान करते रहे। लोगों को बताते रहे कि मैं वही शरत हूँ, जो उनकी ऊँगलियाँ थामकर चला। बड़ा हुआ। आम के पेड़ो पर ढेले मारे। गाँव वालों से लड़ा। उन्हे गालियां दीं। और अब ऐसी जगह पर हूँ, जहाँ छींक दूँ तो बड़े-बड़े डॉक्टरों की भीड़ लग जाती है। डाँट दूँ तो साहबो को पसीने छूट जाते हैं।

अचानक शशि बाबू की उड़ान थम गयी। मुझे सतह पर लाते हुए बोले, "शरत जी, आप तो स्वयं विद्वान हो, दुनिया को समझाते हो। बुरा न मानो तो एक सवाल मैं भी करूँ!"

मैं हँसी से लोट-पोट हो गया, "आप तो मुझे शरमिन्दा कर रहे है।"

"जो भी समझो। लेकिन मेरा सवाल अपनी जगह है। यह बताओ कि जिस मकान को बचाने के लिए आप कर्ज चुकाने जा रहे हो, उसके कितने हिस्सेदार हैं?"

"हिस्सेदार?" मैं कुछ समझ नही पाया, "हिस्सेदार कौन हैं? बस काका हैं।"

"काका तो अब पके आम ठहरे। मैं उनकी बात नही कर रहा हूँ। उनके बाद कितने हिस्सेदार होंगे ?"

"उनके बाद मै और बडे भैया होंगे।"

"तो तुम अकेले यह कर्ज क्यो चुकाना चाहते हो ?"

"क्या करूँ ? मकान नीलाम हो जाने दूँ ?"

"मैंने यह कब कहा ? मेरा सवाल तो सिर्फ इतना है कि यह कर्ज आपके भैया भी तो चुका सकते थे ?"

"शशि बाबू, आप तो जानते हैं कि बडे भैया वर्षों से घर खत भी नही भेजते।"

और शशि बाबू आगे बढ चले, "यही तो मैं कह रहा हूँ। उसका खत नहीं आता, लेकिन वह जरूर आयेगा एक दिन। जर-जोरू-जमीन कौन छोड़ता है, आजकल के जमाने में ?"

"छोडना भी नही चाहिए।" मैंने कहा, "लेकिन अपना हिस्सा तो मिलेगा।"

"शरत जी, यही तो मैं समझा रहा हूँ। आपका अपना हिस्सा भी चला जायेगा। मदनवाँ का कोई ठीक नहीं। किसी का एहसान इसने जिन्दगी मे नही माना। शरत साहब, यह आपका बाप है। कहते संकोच होता है। लेकिन मैंने बडे-बडे रंग देखे, इसके।"

"मगर शशि बाबू, जब आपको इतना ध्यान है कि वह मेरे बाप हैं, तो यह भी मालूम होगा कि बेटे के सामने बाप का नाम किस तरह लेना चाहिए ?" मेरा तेवर था।

शशि बाबू ने चाय के लिए घर मे आवाज लगायी। बोले, "लगता है, सेवा मे कुछ कमी रह गयी, शरत साहब ! आप तो बन्दे पर इतना नाराज हो कि मै बुरी तरह डर गया। बात यह है कि मदन अपना लंगोटिया यार है। उसके लिए आत्मीयता से कुछ कह जाऊँ तो आपको बुरा नहीं मानना चाहिए।"

चाय का गिलास थमाते हुए वह विषय पर लौट आये, "तो मैं

रहा था शरत साहब कि आज पांडेय जी आप से खुश हैं। कल सारा एहसान भूल जायेंगे। देखो, मेरा ही भूल गये तो आपका क्या याद रखेंगे ?"

"तो ?"

"तो कल बड़े भैया से खुश होकर सारी जमीन उसके नाम कर जायेंगे। इसलिए पहले ही बता दे रहा हूँ। आपको अपना बैंक-बैलेन्स नहीं बिगाड़ना चाहिए। अरे, आप भूल गये क्या कि इसने मुसीबत के दिनों में आपको घर से निकाल दिया था ? नम्बरी हरामी है यह।"

इस वाक्य के साथ मैं आक्रोश के चरम पर था। और मेरा हाथ उठ गया। शशि बाबू के गाल पर 'चटाक' की आवाज हुई। मैं चीख उठा, "लफंगे, खबरदार जो मेरे बाप को गाली दी...।"

एक भूकम्प-सा उठ खड़ा हुआ।

यह भी मेरे युद्ध का मंगलाचरण था।

मैं तेज कदमों से घर लौट गया। मेज पर चाय सर्द होती रही।

शशि बाबू भीतर से जल रहे थे। उनके घर में कुहराम मच गया। औरतें हाथ फेंककर झगड़ने पर उतारू थीं। और शशि बाबू उन्हें मना कर रहे थे, "नहीं, ऐसे नहीं। यह गलत तरीका है।"

□ □

गाँव में यह सनसनी बहुत तेजी से फैल गयी कि शरत ने शशि बाबू को चाँटा मार दिया। जिसने भी सुना, विश्वास नहीं हुआ।

"सच ?" उन्होंने पूछा।

"एकदम सच। हमने आँखों से देखा है।"

"तो यह तो शेर और बकरी की लड़ाई है। गजब हो गया।"

"जो भी हुआ। मगर बकरी जीत गयी।"

किसी ने कहा, "आप शरत को बकरी कह रहे हो ? आपको शेर की पहचान नहीं है। अब वे दिन लद गये, जब मियाँ खलोल खाँ फाख्ता उड़ाया करते थे।"

हालाँकि बात मेरे भले के लिए थी। शशि बाबू बताते रहे कि गाँव की राजनीति के चलते काका और उनके बीच कितनी झड़प हुई! कितने मतभेद हुए! लेकिन आज भी एक के करवट बदलने से दूसरा हिलता है। एक की थाली में दूसरा खाता है। अलग खा लें तो पचेगा नहीं। लाख आयुर्वेद का हजमाहजम खायें। पूरा औषधि-विज्ञान आजमायें। यह तो रिश्ते का तकाजा है। और दुख के क्षण तो ऐसे होते हैं कि आदमी एक सेकेण्ड में सब कुछ भूल जाता है। सुखी रहो तो चाहे जितनी लड़ाइयाँ पालो। जितने विरोध हो, सब निबटा लो। मगर इस दुख की वेला में दुश्मन की भी समझदार भूमिका यही होगी कि वह आपकी दर्दीली स्थितियों में डूब जाये। आपका दुख बँटाये।

शशि बाबू मेरा दुख बँटाते रहे।

उन्होंने कहा कि मैं मानसिक शान्ति रखूँ। जरा भी न घबराऊँ। अच्छी तरह सोचकर बताऊँ कि दूर-नजदीक तक मेरे सम्बन्ध किससे इतने खराब हैं कि वह इस हद तक उतर सकता है! मैंने सोचना शुरू किया। बहुत सोचा। लेकिन मेरी स्मृति में ऐसा कोई भी नाम नहीं उभरा।

शशि बाबू ने रवीन्द्र शुक्ल का नाम लिया। बताया कि वह देहात में ऐसे दंगे-फसाद करने की रोटी खाता है। मेरा उस पर सन्देह तो नहीं? उनके इस सवाल पर मुझे जोरों की हँसी छूट गयी। शशि बाबू समझाने लगे कि ऐसे मौके पर हर बात को बारीकी से सोचना चाहिए। कुछ भी अविश्वसनीय नहीं होता। आदमी का रंगो-ईमान बदलते देर नहीं लगती।

फिलहाल शशि बाबू का जोश कम नहीं हुआ।

गाँव लौटकर उन्होंने लोगों की एक मीटिंग बुलायी। देहात में दिनों-दिन बढ़ती हुई घटनाओं पर भाषण दिया। उनका कहना था कि ये घटनायें किसी महाविनाश की पूर्व भूमिका हैं। आज शरत के साथ यह हुआ है तो कल किसी के साथ कुछ भी हो सकता है। शरत कमाऊ आदमी है। सो अस्पताल तक जा पहुँचा। कल किसी गरीब के साथ हुआ तो बेचारा घर में ही दम तोड़ देगा। किस बूते पर अस्पताल जायेगा?

उन्होंने गाँव वालों के समर्थन से 'ग्राम्य सुरक्षा संगठन' का निर्माण किया। और उसके अध्यक्ष पद को सुशोभित कर अपना कार्यक्रम रखा कि गाँव वाले संगठन को आर्थिक सुरक्षा देंगे। संगठन गाँव में हर संभव मूल्य पर शान्ति का प्रयास करेगा। फिर भी किसी के साथ कुछ घट जाये तो अराजक तत्वों से कानूनन लड़ने और घायल की दवा-दारू कराने का दायित्व संगठन वहन करेगा।

उस मीटिंग के बाद शशि बाबू चन्दा एकत्र करने लगे। कुछेक लोगों ने दबी जुबान से कहा कि शशि बाबू इस घटना को भुना रहे हैं। यह गाँव के प्रति चिन्ता नहीं, व्यक्तिगत आमदनी का माध्यम है।

उस शाम, शशि बाबू ने अपने भक्तों से कहा, "सेवको, दो-चार टाँगें और तोड़नी पड़ेंगी। वरना समझदारों की अधिकता है। धन्धा चल नहीं पायेगा।"

□ □

अस्पताल की एक सुबह।

आस-पास लोगों का हुजूम। मरीजों की कराह। मिलने वालों की बैठकें। उड़ती हुई सूचनाएँ—पिछली रात चार डॉक्टर्स ने एक नर्स से बलात्कार किया। अस्पताल की दवाओं से भरी हुई एक गाड़ी ब्लैक मार्केट जाते हुए पकड़ी गयी। बेड खाली न होने के कारण एक शिक्षक ने अस्पताल के बरामदे में दम तोड़ दिया। कोई नेता जी, किसी ज्योतिषी की सलाह पर स्पेशल वार्ड में भर्ती हैं। बुरे ग्रहों से बचने के लिए यह सबसे उपयुक्त जगह थी।...

सामने की बेड पर कोई फैक्ट्री का वर्कर पड़ा था। वह बता रहा था कि चलती हुई मशीन में उसका पूरा हाथ पड़ गया। पर व्यवस्थापकों का इरादा है कि वे कोई मुआवजा नहीं देंगे। जबकि पिछले साल एक सज्जन ने जान-बूझकर अपनी उँगली अड़ा दी। और पूरे तीस हजार ऐंठ लिये।

उससे थोड़ा हटकर, किसी दफ्तर का एक हड़ताली लेटा था। उसे

दौरे पड़ते थे। वह अकसर मुट्ठियाँ तानता। और भागने की कोशिश में चीखता रहता।

मेरी बगल में एक रंगीन तबीयत वाले की खाट थी। उसने रिक्शे से गिरकर पाँव में फ्रैक्चर कर लिया था। वह बड़ी बेफिक्री से हर क्षण कुछ गा रहा होता। किसी से बतिया रहा होता, "बन्दो, इस तरह दुखी हो रहे हो, जैसे मेले में तुम्हारी बीवी खो गयी हो। अरे टाँग ही तो टूटी है! उसका क्या करना? बाकी तो सब सलामत है।"...

और इन सबके बीच में—एक दर्शक। एक समीक्षक।

स्टाफ नर्स कुछ क्षणों के लिए वार्ड में आयी। वह मुझ पर बड़बड़ाती रही, "तुम लोग रास्ता चलते हाथ-पैर तुड़वाते हो। और मरने अस्पताल चले आते हो। भगवान का घर जो खुला है।"

यों जबसे मैं अस्पताल गया, स्टाफ नर्स रोज कुछ ऐसी ही जुगाली कर जाती। शशि बाबू ने कहा था, "मैडम, अपना आदमी है। मुसीबत का मारा। विशेष ध्यान रखना।" वह मेरा विशेष ध्यान रखने लगी। उस अन्तराल में उसने मुझ पर कई-कई इल्जाम लगाये कि मैंने उसका ड्यूटी वाला कोट चुरा लिया, कि मैं अस्पताल से दूध लेकर किसी चाय वाले को बेच देता हूँ, कि नर्सों पर बम्बइया हीरो जैसी निगाह रखता हूँ।

उसका शिकायती रिकॉर्ड जब शुरू होता, मैं मुँह घुमाकर कोई पत्रिका पढ़ रहा होता, दूसरों से उलझ रहा होता। ऐसे में नर्सें फुसफुसा उठतीं—किसी पेशेन्ट के साथ ऐसा नहीं करना चाहिए। बेचारा कैसा चुपचाप सुन लेता है!

नर्सें चाहतीं कि मैं उस पर झिड़क उठूँ। उसके तोहमदों का विरोध करूँ। नर्सों से बतियाऊँ।

मगर मैं पूर्व स्थितियों से इतना आक्रान्त था कि किसी व्यर्थ की लड़ाई में अपनी शक्ति खोना नहीं चाहता था। मुझे अकसर स्टाफ नर्स के शब्द भी सुनायी नहीं पड़ते थे। एडलिन आकर उन शब्दों की याद दिला जाती।

एडलिन जेम्स—एक हिन्दुस्तानी लड़की, जो अपने विदेशी पिता के साथ योरप में पली। बड़ी हुई। और एक दिन अपनी माँ के लिए यहाँ आयी तो यहीं की होकर रह गयी।

याद आता है, एडलिन के साथ मेरा पहला दिन। स्टाफ···झिड़ककर जा चुकी थी। उसने मुस्कराती आँखों से मुझे इस तरह देखा, जैसे मुझमें वर्षों पूर्व का कोई परिचय पा गयी हो। उसकी आँखों में आकाश-सी विस्तृत सहानुभूति थी। उदारता का एक विराट ग्रन्थ था। उसकी आँखों में एक माँ थी। बहन थी। अलौकिक शक्ति-सी वह मुझपर हाथ उठाये खड़ी थी।

मैं एडलिन की आँखो से भीग उठा।

उसके होंठ खुले, "अब कैसे हो, तुम ?"

"ठीक हूँ, सिस्टर !"

"तुम्हे तकलीफ नही होती ?" वह शर्मिन्दा थी।

"किस बात से ?"

"स्टाफ···की।"

"स्टाफ···की किस बात से ?"

और यह सुनते ही वह लोट-पोट हो गयी। उसकी हँसी बर्फ के टुकड़ों-सी मेरे चारो ओर बिखर गयी।

एडलिन जब ड्यूटो पर होती, मुझ तक आती। हाल पूछती। ढेरों बतियाती। ढेरों खिलखिलाती। और मुझे लगता जैसे पहाड़ पर दीदी के साथ छुट्टियाँ गुजार रहा हूँ। एडलिन ने भारतीय गाँव नही देखा था। लिहाजा वह मेरी बातो को दूसरी दुनिया के तिलस्म जैसा सुनती। इतना डूब जाती कि उसे कभी गुस्सा भी नही आया कि हत्यारो ने मेरे साथ कैसा सलूक किया !···

उस दिन स्टाफ···जैसे ही मुझे डाँटकर गयी, उसकी सहायिका मुझ तक आ गयी, "आइ एम सारी मिस्टर शरत ! स्टाफ···की आदत ही ऐसी है।"

एडलिन ने कहा, "कमाल है। एक डाँटता है तो दूसरा पुचकारता है। एक खुलेआम भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहा है तो दूसरा रामनामी ओढ़कर सुभाषित बोलता है। अफसरों के ये दोनों चेहरे तुम्हें हर भारतीय दफ्तर में आम मिलेंगे। सच बताओ भरत, क्या तुम्हारे दफ्तर में ऐसा नहीं है ?"

"है क्यों नहीं !" मुझे अपने अधिकारी और उसके सहायक की याद आयी। अपनी एक सहकर्मी महिला का कथन भी। मैंने उसे ज्यों-का-त्यों सुना दिया, "वहां तो ऐसा है मिस कि एक सघन बालों वाला है तो दूसरा गंजा। एक आंख मूंदकर सब कुछ देखता है तो दूसरा आँखें फाड़कर देखते हुए भी अन्धा बना बैठा है।"

एडलिन खिलखिला उठी, "बस-बस, मैं समझ गयी। एक को महानगरों के चक्कर काटने से फ़ुर्सत नहीं तो दूसरा छुट्टियों में भी ऑफिस की कुर्सी से अपना शिकार तलाश रहा होता है।"

मुझे आश्चर्य हुआ, "तुम कैसे जान गयी ?"

एडलिन मुझे करिश्मों में डालती रही कि वह जादूगर है। फिर थोड़े उलझाव के बाद उसने कहा कि मैं पिछले दिनों ढेर सारी खबरों के बीच उसे बता चुका हूँ कि मेरा बड़ा साहब 'एकता चलो' की साक्षात मूर्ति है, जबकि छोटे साहब के पीछे पूरा हुजूम चलता है। बड़ा साहब अवैध कामों के लिए बिनोवा भावे की पुस्तकें लेता है, तो छोटे साहब को इम्पोर्टेड माल से बहुत लगाव है। बड़े ने अरब के रेगिस्तानों की धूल फाँकी है, तो छोटे ने कश्मीर की उन पहाड़ियों के दर्शन भी नहीं किये, जहां वह अपने माँ-पिता की गलतियों के परिणामस्वरूप पैदा हुआ था।

एडलिन ने कहा, "और भी बताऊँ ?"

"नहीं।" मैं हँस पड़ा।

"मगर एक बात बताओ। ऐसे में एडजस्ट कैसे करते हो ?"

एडलिन के साथ मैं भी गम्भीर हो उठा। उसे बताता रहा कि जैसे वह चल रही है, मेरी भी हालत वैसी ही है। मैं वर्षों से अपने साहबों की

अकृपा का शिकार हूँ। क्योंकि मैंने छोटे के हुजूम में शामिल होने से इन्कार कर दिया। और बड़ा महज इसलिए नाराज है कि उसने एक एक विदेशी लड़की को मेरा 'होस्ट' बनाकर, मेरी आड़ मे रोमियो होना चाहा। मैने माध्यम बनना स्वीकार नही किया।

एडलिन कहने लगी कि मैंने स्टाफ…का तकिया-कलाम तो सुना ही नही। वह बात-बात पर 'गांधी जी ने कहा था…' जैसे जुमले छोडती है। वैसे भी गाँधी एक ऐसा मोंहरा है, जिसे नेता, अफसर से लेकर चपरासी तक—सभी इस्तेमाल करते हैं।

एडलिन अगली सुबह अस्पताल छोड़कर चली गयी। हमेशा के लिए। उस पर आरोप था कि वह लोगो को स्टाफ…के खिलाफ भड़काती है। मैं परेशान हो उठा।

लेकिन उसकी आँखों मे पूर्ववत चमक थी।

उसने कहा कि उस बाउड्री से निकलकर वह कुछ भी कर लेगी। कही भी पत्थर कूट लेगी। इस देश मे वैसे भी कोई काम पत्थर कूटने से अधिक अहमियत नहीं रखता।…

□ □

अस्पताल से निकला तो मेरे हाथों से शशि बाबू का बिल था। बिल मे रुपयो का कोई सिलसिलेवार हिसाब नही था। शशि बाबू ने कहा कि वे रुपये मुकदमे के दौरान बहुत आवश्यक जगहों पर खर्च किये गये। बैंक और अस्पताल से निबटने के बाद दस हजार रुपयों की राशि अदा करना मेरे लिए कतई संभव न था।

मैं खून के घूंट पीता रहा।

शशि बाबू दहाड़ते रहे कि मैं रुपये तुरन्त उन्हे लौटा दूँ। वरन् बैंक के चंगुल से तो बच गया। पर उनके चंगुल बहुत तेज हैं। पलक झपकते वे मकान खाली करवा लेंगे।

शशि बाबू मुहावरों का इस्तेमाल करने लगे कि अन्धे के साथ हम-बिस्तर होने पर उसे घर तक पहुँचाना पड़ता है।

मैं चुप था।

और चुप्पी की एक सुबह शहर के लिए निकल पड़ा। कोई आश्रय न सम्बल। दूर तक रिक्तता के बियाबान थे। हिन्दुस्तान की धरती जिसकी धूल 'दिनकर' और 'इकबाल' माथे लगाने को कह गये हैं, मैंने देखा—एक कुत्ता बहुत बेसब्री से वहाँ टाँग उठाये मूत रहा था। मुझे लगा कि यह साधारण कुत्ता नहीं, उन कवियों में से किसी एक का पुनर्जन्म है। ऐसे में मैं कहाँ जाऊँ?

अन्ततः बेकारी के दिनों में ली गयी वकालत की डिग्री काम आयी। और मैं कचहरी में काला कोट पहनकर उस न्याय का प्रवक्ता बन बैठा, जिसकी मात्र थोड़ी-सी छाया ने मेरे कुनबे को पहचानहीन कर दिया। मैं एक चिन्गारी—अपने आग होने की प्रतीक्षा में था।

स्थितियाँ बिल्कुल साफ थीं।

मुझे लगा कि यह शशि बाबुओं का देश है।

बिसेसर बाबुओं का देश है।

कातिल साहबों का देश है।

वर्मा, कालका प्रसाद और अष्टभुजाओं का देश है।

मेरे अफसरों का देश है।

इस देश में मैं—तूफान का एक पत्ता, जितना भी फड़फड़ा सकूँगा, वक्त की पीठिका पर एक शिलालेख छोड़ जाऊँगा। जिसे कल देखकर आगामी पीढ़ियाँ हाथों में शस्त्र उठायेंगी। जरूर उठायेंगी। मैं कहाँ से शुरू करूँ? मेरी सोच का समुद्र हरहराता रहा।···

कचहरी की उन्हीं सुबहों में सुगना आया। किसन भी साथ था।

सुगना एक बच्चे की तरह उँगलियाँ उठाता रहा। छटपटाता रहा। घन्टों अपना सवाल दुहराता रहा। उसने कहा, "शरत भैया, क्या शशि बाबुओं को इतना अधिकार है? क्या यह उन्हीं की सरकार है? वे निहत्थों पर गोलियाँ कब तक चलायेंगे? शरत भैया, कब तक? आखिर कब तक?···

"देखते-देखते मैं नीलाम हुआ। किसन हुआ। तुम हुए। पूरा गाँव ऐसे हादसों से गुजर रहा है। मगर हम कब तक सहेंगे ? शरत, तुम्हें कुछ करना चाहिए। सोचो । तुम सोच सकते हो। जरूर सोच सकते हो।"...

□

रात भर मेरी आँखों में सुगना की छवि नाचती रही।

सुगना को मेरी याद कैसे आयी होगी? गाँव की धरती पर कितने-कितने व्यूह रचते हैं, ये शशि बाबू। सैकड़ों लोग उन फन्दों की भेंट चढ़ जाते हैं। मगर इतना खुंखार कौन होता है?

और सुगना—माटी के लोंदे की एक अर्थहीन उपज। वक्त ने उसे कितना 'बदजात' बना दिया है, कि वह मुझ तक आ गया! और इस तरह सवाल कर रहा है, जैसे मैं भी एक शशि बाबू होऊँ।

ये सवाल सुगना के मन में यूँ ही नहीं पैदा हो गये। इसके लिए जरूरी है, खौफनाक मोड़ों से गुजरने वाली एक लम्बी-निहत्थी यात्रा।

सुगना की यात्रा-कथा पर एक दृष्टि डालता हूँ।

□ □

उन दिनों सुगना एक ऐसे ही मोड़ पर खड़ा था। साथ थे—चम्पा और शशि बाबू। मगर तीनों, तीन दिशाओं मे मुड़ गये। चम्पा गाँव की चौखटों पर काम तलाशती। सुगना अलग-अलग चेहरों में, शहर-दर-शहर सड़कें रौंदता। और शशि बाबू कस्बे के चौराहे पर, जननेता की मुद्रा में, प्रजातन्त्र के नाम भद्दी गालियाँ बकते थे।

यह सिलसिला छिछली नदी की गति से चलता रहा। तभी उसमें कंकड़ फेंकने वाली एक खबर ने जन्म लिया। सारे गाँव में बात फैल गयी, कि सुगना आ गया। बच्चे, उसका साहब जैसा लिबास देखकर इर्द-गिर्द जमा हो गये। अजनबीपन की पहचान मे गली के मरियल कुत्ते भौंकने लगे। पडोस की नयी औरतें किवाड़ की ओट से झाँकने लगीं। बाकी लोगों के लिए वह कही से भी नया नहीं था। यह भी हो सकता है, कि उसका हारा हुआ जिस्म, परिचितों के लिए ऊब का विषय रहा हो।

रस्ते-चौरस्तों के सवालों से होता हुआ जब वह मड़ैया के दरवाजे पर पहुँचा, तो वह 'बाबा भारती' के अस्तबल जैसी खुली थी। भीतर एक डोरे-सी देह स्वयं को लुगड़ी मे ढकती हुई, एक बड़े छेद के आर-पार देख रही थी। उसमे पुरानेपन की कुछ भी गन्ध नहीं थी। सहसा उसे आश्चर्य हुआ कि शरीर के पूरी तरह बदल जाने के बावजूद सज्ञा नहीं बदलती, क्यों ? कुछ सवालों के जवाब नही होते, इस बात का विश्लेषण भले ही उसकी क्षमता से परे रहा हो, लेकिन एहसास तो था ही।

औरत दौड़कर उसके पाँवों से लिपट गयी।

"मेरे राजा, माफ कर दो मुझे। मैंने पाप किया तुम्हारे साथ !"

पत्नी की टेसुई देह का यह सस्करण देखकर, वह अपने भीतर की सम्पूर्ण रामायण भूल बैठा। उसका पुरुष होना इस विस्मृति का सबसे बड़ा कारण था।...

शुरू के दिन थे।

चम्पा जब ब्याहकर आयी तो समूचे गांव को उसके भीतर एक चाँद नजर आया। रूप से कर्म थोडे ही बदल जाता है। बाबुओं के घर एक मजदूरिन के रूप में आते-जाते वह चर्चित हो गयी। किसी ने उसके भीतर एक 'मीनू कुमारी' की पहचान की। जुगुल बाबू ने अपनी तीसरी पत्नी को भी, उसकी तुलना मे खाक समझा। और एक बूढे बाबा की दृष्टि में वह, नगीना कम्पिनी को 'उस' जानमारू लौंडे से भी बढ़कर थी।

इन्हीं संवादों के बीच एक प्रसिद्ध मुहावरे का गला घोंट दिया गया,

"गुदड़ी में लाल होता है।"

"हाँ, होता है।"

"लो, अब सुगना-बहू तुमको लाल लगती है ? अरे लाल तो पत्थर होता है !"

इस अन्तिम सत्य का किसी ने प्रतिवाद नहीं किया।

चम्पा बड़ी जाति की होती, तो शादी के महीनों बाद भी उसकी हथेली पर काम-काज से उगने वाले फफोले की जगह मेंहदी की पीली हँसी होती। आम लोगों की निगाह मे यह कर्म का फल था। पत्नी को मुमताज की तरह रखने के पक्षधर चमारो को भी, सारी उम्र हवेली वालों के नाम गुजारनी पड़ती थी। तब चम्पा इस बन्दिश से अलग कैसे रह पाती ?

यही होना था।

वैसे तो लगभग वह हर रोज ठाकुरो की बखरी मे आती थी। लेकिन जब खेत में खड़े पौधे, पककर झुकी बालियों से कनखी मारते तो चम्पा की शरमायी आँखों मे एक समन्दर का ज्वार होता।

लाठी के घोड़ो पर सवार बच्चे चम्पा तक जाकर ठिठक जाते। मातायें कहतीं—सुगना-बहू, सुना है तू बहुत अच्छा गाती है ! रिकार्ड जैसा। हमे भी सुनाओ अपना गाना।

और वह शुरू हो जाती—

रेलिया न बैरी
जहजिया न बैरी
पइसवा बैरी ना।
देसवा-देसवा भरमावे हो पइसवा बैरी ना,
हो पइसवा बैरी ना।...

सुगना टोकता, "चम्पा तू भी कैसा गीत सुनाती है ? यह तो छोरे-छिछोरों का गीत है। अपना वतन छोड़कर कल के छोकरे जाते हैं परदेस। यहाँ गाँव में राजा लोगो के पास क्या कम काम है ? वहाँ जाकर मुंशी-गीरी करते हैं। और यहाँ आकर बताते हैं कि बन्दूक चलाने में काफी पर

गट्ठा पड़ गया ।"

चम्पा कहती, "अभी रहने दो मालकिन, छोटे साहेब की शादी में ऐसे-ऐसे गीत सुनाऊंगी कि...। मगर नेग छोटा-मोटा नहीं लूंगी।"

"अच्छा चल-चल। छोटा मत लेना।"

"आप तो बेमतलब टालती हैं। जाने दो, मैं छोटे साहेब से ही माँग लूंगी। क्या दोगे साहेब ?"...

बच्चे चुप रह जाते। चम्पा की शोखियाँ शरारत में बदल जाती, "चलो, मैं तुम्हारा यह घोड़ा ले लूंगी।"

बच्चे नाराज होकर 'घोड़ा' उस पर तान लेते। मातायें कहतीं, "चम्पा, तू बड़ी पाजी है रे। सारी बँसवार कटवा दूंगी तेरे लिए। शादी तो होने दे !"

उसके बाद, जब भी उन्हें चिढ़ाना होता, चम्पा कहती, "आज काली के चौरे पर माथ टेककर आई हूँ कि जल्दी से साहेब की...।"

□ □

...एक दिन तिजहरिया को चमरौटी से सियारों-जैसी आवाजें आने लगी। पता चला, सुबुआ मर गया। सुबुआ, यानी सुगना का बाप। पिछले कई महीनों से खून की 'कै' करता था। डॉक्टर ने तो पहले ही बता दिया था। लेकिन बड़े-बूढ़ों का साया, लोहे के मजबूत गर्डरों से गुंथी बिल्डिंग की छाँह से भी घना होता है। उसकी आखिरी टूटन तक किसी चमत्कार की प्रतीक्षा होती है। लेकिन चमत्कार नहीं हुआ। और सुबुआ मर गया।

उस रात लगातार बारिश होती रही। घुप्प अँधेरे में पानी के शोर के अतिरिक्त, मन को बाँधने जैसा कुछ भी नहीं था। ऐसे में लाश की रखवाली कितनी भयावह होती है? लेकिन उससे भी भयावह होता है भविष्य का असंभावित रूप। पति-पत्नी अलग-अलग दिशाओं में जमीन को घूरते हुए, भविष्य के प्रेत-जिस्म से उलझ रहे थे। बाकी वहाँ बोरसी का धुआँ, उनकी देह-गन्ध को छूकर सुराखों की ओर मुड़ जाता था।

तभी किसी के छाते पर पानी की आखिरी बूँद गिरी। वह मड़ैया का चौखट लाँघने लगा। ढिबरी की रोशनी में दोनों ने पहचाना—शशि ठाकुर थे।

"बाबू !"

"हाँ रे !"

"बैठो सरकार !"

उसने मचिया खिसका दी।

"देख सुगना, कुछ है-वै कि नहीं ?"

"क्या है, सरकार ? होता तो यह मरता क्यों ?"

"हूँ।...तो कुछ नहीं है !"शशि बाबू गम्भीर हो उठे।

"अच्छा सुगना, जितने की जरूरत हो, घर चलके ले आ। बुढ़वा नेक आदमी था। किरिया-करम ठीक से करना।"...

शशि बाबू का घर आना, आकाश में धूमकेतु उगने जैसी एक घटना थी। तीरथ-जात्रा हो या मरन-जात्रा—प्रायः ऐसे ही मौके उदार दिखने के लिए होते है, जब कोई बाबू आकर चौखट पर पाँव रखता है। बाकी साल भर वे अपने दरवाजे से आवाज देना, भारतीय संविधान की एक अलिखित पंक्ति मानते हैं।—"अबे ओ, मुबुआ के दामाद—सुगना रे-ए-ए।...इतना दिन चढ़ गया, हर कब नाधेगा रे ?"

कोई और मौका होता तो वे दोनों शशि बाबू के पैरों पर बिछ जाते। मालिक, हम ही नहीं, हमारे पुरखे भी आपका दिया हुआ खाते थे। यह तो विरासत है ठाकुर !...लेकिन ऐसे में जब घर की चौखट पर मौत का हस्ताक्षर हो, कोई और भूमिका नहीं निभायी जा सकती। चुपचाप वह उठा। और झमझमाते पानी में शशि बाबू के साथ हो लिया।

सुबह आठ बजे अरथी उठ गयी।

पुरोहित के शंख और कन्धा देने वालों के 'राम-नाम सत्त है' के शोर उसे कीर्तन जैसी शान्ति देने लगे। जो भी हो, पिता की आत्मा अब तृप्त हो जायेगी। उसे अपने भीतर संवादों का एक सिलसिला महु-

सूस हुआ। औरतों का हुजूम सम्मों देवी के चोरे तक छोड़ने आया। अन्तिम बार मृतक के पैर छूते हुए चम्पा बयान कर रोने लगी। सुगना ने कहा, "चम्पा देर हो रही है। बड़की नदी जाना है।"

बड़की नदी—यह सुबुआ की अन्तिम इच्छा थी। गाँव से दो मील उत्तर की ओर बहने वाली नदी में मौसम के बाद रेत-ही-रेत होती है। बीच में पगडंडी की तरह लपलपाता हुआ जल, देहात के बूढ़ों के लिए अन्तिम दिनों में चिन्ता का विषय होता है। ऐसे मे विरासत में देने के लिए भले ही उनके पास और कुछ न हो, लेकिन वे बड़ी नदी तक जाने की योजना अवश्य देते हैं।

यह सब शशि बाबू की वजह से संभव हुआ।

उस रात पति-पत्नी धर्म-ग्रन्थों की क्षेपक कथायें दुहराते रहे, कि सचमुच परोपकार की महिमा अपार है। धरती जाने कब की धँस गयी होती! वह तो कुछ पुण्यात्माओं के सहारे टिकी हुई है।

□ □

यह चौथी बार था।

शशि बाबू समझा गये, "देख सुगना, तुम्हारे बाप-दादे चौखट बदलते रहे तो ठीक था। दूसरे की लड़की पर तो रहम कर। कोई एक घर पकड़ ले!"

यही हुआ। सारे गाँव की मजूरी छोड़कर पति-पत्नी शशि बाबू के घर-बाहर दिन गुजारने लगे। सुगना खेतों में बीज डालने से लेकर फसलों के घर आने तक की सम्पूर्ण योजना से सम्बद्ध हो गया। इसके अतिरिक्त वह बैलों के पालनकर्ता की भूमिका निभाने लगा। चम्पा कूटने-पीसने के साथ-साथ ठकुराइनों के मायके-प्रसंग में जमकर भाग लेती।

लेकिन इस तब्दीली से गाँव खामोश रहा हो, ऐसा नहीं था। सुबुआ के दाह-संस्कार तक तो सब ठीक था। ऐसे मौके की उदारता को किसी स्वार्थपूर्ण घटना से जोड़ना बेमानी होता। लेकिन बाद में भी शशि बाबू

का सन्तों जैसा आचरण देखकर, सन्देह होना स्वाभाविक था ।

समूचे गाँव में किस्से होने लगे। केशवदास की कविता में रस का अभाव हो सकता है। लेकिन गाँव की दादा-टाइप निरक्षर हस्तियों के भाषण में इतने अधिक सौन्दर्य-तत्व मिलेंगे, कि उसे सुनकर विवेकानन्द भी चमत्कृत हो सकते थे। मन्दिर के चबूतरे पर हर शाम शोहदों की भीड़ इकट्ठी होती तो ऐसे ही वक्तव्य सामने आते। जिनका साराश यह था कि मजनू खाक था। आज वह होता तो शशि बाबू के घर पानी भरता।...

सुगना इन किस्सों से बेखबर रहा हो, यह नहीं था। किन्तु गाँव की हकीकत से वह परिचित न हो, यह भी नहीं था। किस्से-कहानी तो महज पेट भर खाकर हाजत करने वालों के चोंचले हैं। यह न करें तो हाजमे के लिए गोलियाँ खानी पड़ेंगी। महत्वपूर्ण यह था कि उसके ऊपर शशि बाबू का स्नेह-डूबा हाथ था। जमीदारी टूटने के बाद भले ही कांग्रेस ने सबको समान अधिकार दे दिया हो, लेकिन उन दिनों वह बाबू की प्रजा था। और आज भी वह, उसे प्रजा की भूमिका मे शामिल किये हुए हैं। ऐसे मे गाँव चुप्पी साध ले, नामुमकिन। और सुगना इन किस्सो पर कान दिये घूमे, यह भी नामुमकिन।

☐ ☐

दिन, सप्ताह, महीने गुजरे। एक-दो मौसम भी।

अफवाहें गुजर गयी। अथवा यूँ कहे कि लगातार सुलगते एक विषय को समय के अन्तराल ने आकृतिहीन बना दिया। अन्ततः शशि बाबू एक 'सैन्टाक्लॉज़' साबित हुए।

मौसम की पहली फसल आने पर चम्पा ने साड़ी ली। सुगना ने धोती और पीला अँगोछा। यही तो निशानी है, जो कम-से-कम साल भर रहती है। बाकी अनाज से क्या होता है? आज हाड़ी भरी है। कल देखो तो खाली।...

एक दिन सुगना ने एक मुड़ा-तुड़ा कागज शशि बाबू को थमा दिया।

"क्या है रे ?"

"चिट्ठी सरकार !"

शशि बाबू ने कागज पर आँख गड़ा दी। टेढ़े-मेढ़े अक्षरों का अर्थ समझते देर न लगी। और वे मुस्करा उठे, "तो सास जी ने बुलाया है ?"

"हाँ सरकार !"

"कब जा रहे हो ?"

"जब हुकुम हो सरकार !"

मुगना ससुराल चला गया। चम्पा उसके सारे काम निबटाती रही। स्वीकृति से पहले, शशि बाबू ने पूछा था, "चम्पा अकेली रहेगी ?"··· सुगना ने कहा, "दो दिन की बात है सरकार ! और आपके रहते क्या चिन्ता-फ़िकिर ?"

तीसरा दिन था। शशि बाबू ने उसे उम्र भर के लिए चिन्ताओं से मुक्त करने की पहली शुरुआत की। दिन भर अकेले घर से लेकर खेतों तक दौड़ते हुए थक गयी चम्पा। शाम, जब कौवे घर-घर गुहार लगाकर नीम पर आ बैठे तो शशि बाबू को लगा, अब किसी आगन्तुक की संभावना नहीं है। उन्होंने कहा, "चम्पा, एक बार बैलों को और देख ले। फिर घर जाकर आराम कर।"

चम्पा उठकर कोठरी मे गयी। बैलों को अन्तिम बार भूसा देने के लिए मुड़ी तो अँधेरे में एक आकृति उसे अपने जबड़ों में कसने लगी। वह चिल्लायी नहीं। उसने प्रतिवाद नहीं किया। सिवा एक-दो शब्दों के, एक दुःस्वप्न की तरह घूरती रही।

उसे बैलों की याद न रही।

छूटते ही वह घर लौट आयी। रोटी-पानी के बजाय खटोले पर गठरी की तरह लुढ़क गयी। उसकी आँखों के सामने नेपथ्य की सच्चाइयाँ थी। जिनसे मंच की भूमिका का कोई सम्बन्ध नहीं।

चम्पा किसी को समर्पित हो जाये, यह सहज तो नहीं था। लेकिन एक खौफनाक भूख के पंजे मे वह लगातार तड़पती रही थी, जो मुगना

को अस्वीकार करने के कारण उत्पन्न हुई थी। शादी की रात वह रोती-चीखती रही, "तुम मेरी माँ नही हो जी। बेच दिया मुझे उस बन्दर के हाथ। तुम्हें मैं माँ कहूँगी ?"

लेकिन उसकी चीख अर्थहीन साबित हुई। पहली बार चम्पा की जिन्दगी में सुगना आया होता, तो वह शायद स्वीकार कर लेती। लेकिन सपने जब मीलों फैलकर दिनचर्या के अन्तहीन सिलसिले से जुड़ जायें, ऐसे में उन्हे स्याह होते देखना कितना तकलीफदेह होता है !

उसके साथ यही हुआ।

गुब्बारे फुलाने की उम्र रही होगी, जब चम्पा की शादी हुई थी। उसे तो याद भी नही। माँ बताती थी, कि तब अकसर चम्पा की नाक चू जाया करती थी। दूल्हा भी ऐसा कि शादी के मंडप मे माटी के घोड़े के लिए रोता रहा।

फिर काफी लम्बा अन्तराल।

वह बड़ी हुई तो शोहदी आँखो की खरोंच, ननद-भाभियों के किस्सों और घास काटने वाली सहेलियों से पता चला कि अब वह जवान हो गयी है। उसके लिए पति की जरूरत है। पति है भी। होमगार्ड का सिपाही। हाय रजा, क्या तकदीर पायी है !

और एक दिन खाकी कपड़ों में कोई आया। पिता ने पूछा, "जानती हो चम्पा, ये कौन है ?"

"कौन हैं ?"

"ये है दरोगा जी।"

चम्पा ने मुँह बनाया, "हाय मोरे बप्पा, इतना छोटा दरोगा ?"

"क्यों, इतना छोटा दरोगा नही होता ?"

"ना।"

"अच्छा, तब नाम बता दें दरोगा जी का ?...ये हैं रामलाल।"

'रामलाल' शब्द सुनते ही उसकी साँस टँग गयी। हँसकर घर में भागी।

शायद ही कोई दिन ऐसा रहा हो, जब घर में रामलाल की चर्चा न हुई हो। ठिकना कद, मगर सुघड़ नाक, कर्पूरी रंग, दूधिया हँसी—कुल मिलाकर वह था भी चर्चा के योग्य। माँ कहती थी, सारी चमरौटी में किसी का दामाद ऐसा नहीं है। चम्पा एक बार ही उसे देखकर पिता का पुण्य सराहने लगी। जल्दी से उसने आईने में अपनी शक्ल देखी। कहीं ऐसा तो नहीं कि उसका चेहरा धूमिल रहा हो? अगर यह सच है तो 'वे' क्या सोचेंगे?

रामलाल कई दिनों तक रहा। यहाँ तक कि चम्पा शर्म भूल बैठी।

एक दिन खेत की मेड़ पर बैठा वह अपने अफसर की कहानियाँ सुनाता रहा। पिता ने कहा था, "चम्पा, रामलाल को भुट्टा नहीं खिलाओगी?"…बालियों के लिए हाथ उठाते वक्त उसकी अँगिया अपनी जगह से खिसक गयी तो रामलाल ललचाये बिना न रह सका। उसने हाथ बढ़ाया तो चम्पा को जैसे बिजली छू गयी। बाँहों में सिमटते हुए वह बोली, "हाय राम, यहाँ नहीं।"

फिर उन दोनों ने मिलकर रात का 'प्रोग्राम' तय किया।

अँधेरे ने जब थके-हारों को थपकी देकर सुला दिया तो शोखियाँ बिखेरते हुए चम्पा बुदबुदायी, "राजा, तुम सिपाही हो?"

"हाँ।"

"तब तो तुम बड़े आदमी हो। अच्छा ये बताओ कि मैं चलूँगी तो क्या-क्या खिलाओगे, क्या-क्या पहनाओगे?"

"जो-जो खाओगी, खिलाऊँगा और जो पहनोगी, पहनाऊँगा।"

चम्पा ने कहा, "यह सब [illegible]

"फिर क्या?"

"बरफी खिलाओगे?"

"हाँ, खिलाऊँगा।"

"तेलीकाट पहनाओगे

"पहनाऊँगा।"

वह 'हो-हो' कर हँसने लगी। रामलाल ने मना किया, "माँ जाग जायेंगी।"

सुबह वह चला गया।

कुछ महीनों बाद उसने गौने का दिन भेजा। एकबारगी मौसम की देह-गन्ध हठीली हो गयी। दूर-दूर तक खेत सरसों के फूलों से भर गये। गली-कूचे में लौंडे गाने लगे—

चढ़ते फगुनवा
पिया ले अइलें गवनवाँ
हे-हो लेअइले गवनवाँ। परदेसी छैला
हमसे कुटावे लगलें धान हो, परदेसी छैला।
दिन भर कुटावें
रतियाँ गोदी में सुतावें हे-हो
गोदी में सुतावें, हो परदेसी छैला
हमसे ना सपरी दूनों काम हो, परदेसी छैला।...

चम्पा नाराज होती। भाभियाँ कहतीं, "तकदीर वालों को यह सब सुनने को मिलता है। हमारी भी कभी उमर थी।"

"अच्छा भौजी, तुम्हारी उमर थी तो तुम क्या करती थीं ऐसे गाने सुनकर ?"

"यही कि लौंडे को आँख मारकर रास्ता नाप लिया। और वह बिदाई के दिन तक दरवाजे पर चक्कर काटता रहा।"

"तो हम भी कल से आँख मारेंगे।"

"हाँ मारना। और कोई न मिले तो बताना। तुम्हारे भैया को पीछे लगा देंगे।"

"ओह्हो, तो तुमने भी अपने भैया पर दाँव लगाया था क्या ?"

"अय-हय्य, क्या जवाब मारा है ! अभी से यह निशाना ?" बड़ी भाभियाँ सराहतीं और हँसी के गोल टुकड़े कई घरों तक बिखर जाते।...

ऐसी ही मादक ठिठोलियों के बीच, एक शाम उसके अंगूरी होंठों

पर शीशे बो गयी। खबर आयी—रामलाल अस्पताल में पड़ा है। वह हैजे की गिरफ्त में आ गया था।

तीसरे दिन पिता लौटे तो उन्होंने कुछ नहीं बताया। बाद में पड़ोसिनों ने चम्पा की माँग धोना शुरू किया तो सब कुछ स्पष्ट हो गया। वह चौखट पर लगातार सिर पटकने लगी। रोकर गाँव के परिन्दों तक को रुला दिया, "नही-ईं-ईं-ईं, वह मरा नहीं है। मत करो ऐसा, मत करो-ओ-ओ-ओ···।"

हफ्तों वह बन्द कमरे के भीतर दौड़ती रही। रात के सन्नाटे में भूतों की तरह हँसती, "मेरा सिपहिया जिन्दा है, और ये माँग धो रही हैं। सब जलती है मुझसे। हा-हा-हा हा-हा।"

और फिर वक्त के साथ सब कुछ सहज हो गया।

वर्षों बाद माँ ने पूछा, "आखिर क्या होगा?"

पिता ने बताया, "यही तो मैं भी चिन्तित हूँ। लोग कहते हैं, अक्षत खराब है।···वैसे मेरी निगाह में एक लड़का है। उमर जरा कड़ी पड़ेगी।"

माँ राजी हो गयी।

और चम्पा के लाख विरोध के बावजूद, उसे सुगना के हाथों सौंप दिया गया। तब से एक भयावह अस्वीकार के साथ वह सुगना की बाँहों में झूलती रही।

□ □

उसने चबरे से झांककर देखा, चाँद निमिया के पीछे से निकल रहा था। दो घड़ी रात गुजर गयी थी। झपटकर उठी वह। उपले सुलगाकर पतीली रख दी। सुगना के साथ उम्र गुजारते हुए वह लगभग अजन्ता की मूर्ति जैसी जीने की अभ्यस्त हो गयी थी। लेकिन शशि बाबू ने उसके भीतर कम्पन ला दिया। उसे रामलाल की बहुत याद आयी। कितना आश्चर्य है कि उसकी आँखों से आँसू नहीं गिरे! वह चीखी नहीं। पत्थर पर सिर नहीं पटका। लगा कि रामलाल के साथ जिये गये क्षण पुराण-

कथाओं के सिलसिले हैं। उनका उपयोग सिर्फ खाली समय को भरने के लिए किया जा सकता है।

इस सोच के बाद उसने महसूस किया कि वह व्यस्ततम क्षणों में जी रही है। शशि बाबू ने उसे एक सुखद संशय में डाल दिया था। उसे लगा कि उसके सपने पुनः जिन्दा हो सकते हैं, बेल की तरह। सपने उपवन हो सकते हैं। अरण्य भी। उसे अपने को इतना कुन्द नहीं बनाना चाहिए। यही तो अवसर है। और उसे अवसर के हाथों जीना ही चाहिए।

..."रानी बनाकर रखूँगा चम्पा। मुनवा के पास क्या धरा है?" शशि बाबू ने कहा था। आगे चम्पा की इच्छा। वह चाहे तो इस रात से ही अपनी नयी यात्रा शुरू कर सकती है—शशि बाबू का खयाल था।

चम्पा आग के पास बैठी सोचती रही। यही तो औरत चाहती है कि उस पर हाथ रखने वाला, उम्र की अन्तिम लौ तक उसकी साँसों में नहाये। उस पर अर्घ्य चढ़ाये। उसे अपना नाम दे जाये। मगर शशि बाबू ने चम्पा को अपना नाम न दिया तो? कहाँ वह, और कहाँ शशि बाबू!

इस सवाल ने जैसे गंगा की तरह उसे अपनी धार में डुबोना शुरू किया। उम्र के मादक क्षणों में गलतियाँ करने वाली आम औरतों-जैसा, उसने सोचा कि अपने मोह-जाल से पुरुष को बचकर निकलने देना, औरत की बहुत बड़ी अयोग्यता है। अन्ततः वह हारेगी नहीं।

कुत्तों की भौंक और बड़े-बूढ़ों की खाँसी के बावजूद वह जा पहुँची, तो उसका हाथ थामते हुए शशि बाबू फुसफुसाये, "शरमा रही हो!"

उन्होंने चम्पा को बिस्तर पर खींच लिया।

शुरुआत पर वह बोल उठी, "तो तुम मुझे बीबी बनाओगे?"

"हाँ।"

"विधि से?"

"विधि से।"

"मगर कब?"

"जल्दी ही।"

"सुगना और गाँव को क्या जवाब दोगे ?"

"कोई सवाल नहीं करेगा। मेरा नाम शशि प्रताप सिंह है।"

चम्पा खुशी से झूम उठी।

रात भर शशि बाबू उसके जिस्म से खेलते रहे।…

सुगना लौट आया। लेकिन उसका होना अर्थहीन था। सब कुछ पहले की तरह होता रहा। चम्पा अपने अधिकार की याद दिलाती रही। शशि बाबू टालते रहे। दिन बीतते गये।

□ □

गाँव फिर चर्चा की उबासियों में डूबने लगा।

मन्दिर के चबूतरे पर बीड़ियाँ सुलगने लगीं। आस्था की कथाओं के लिए समयाभाव महसूस किया जाने लगा। हालाँकि यह बिल्कुल आम बात थी कि चम्पा को बच्चा पैदा होने वाला है। लेकिन उसका सन्दर्भ पिछले एक वर्ष की 'उनकी' दिनचर्या से जुड़ा था। इस बीच चुप्पी के एक लम्बे वातावरण के कारण, एकाएक आँधी-जैसी स्थिति अनिवार्य थी।

वही हुआ। पहली शाम जब किसी ने इस कथानक की शुरुआत की तो एक बूढे ठाकुर मूँछों में हँसने लगे, "बहुत एम्में-बिये किया है तुमने बेटा, मगर सिर्फ एक बात का जवाब देना—बच्चा सुगना का होगा कि…?"

"अय्य-हय्य, कि…कि…?" छोकरों ने खिलखिलाकर तालियाँ बजायीं।

सारा गाँव इस आविष्कार से परिचित हो गया।

और उस रात तो विस्फोटक स्थिति थी।

सुगना दिल्ली भाग गया। वैसी ही नाक, वैसे ही होंठ, आँखें, रंग! कुल मिलाकर बच्चा शशि बाबू पर गया था।

जमी हुई झील-सी आँखों वाली चम्पा, अकेले सारे रस्म-रिवाजों से

लड़ती रही। फ़ुर्सत पाते ही बच्चे को पेट से चिपकाया, और शशि बाबू से अपना अधिकार माँगने जा पहुँची।

देखते ही शशि बाबू लावे की तरह फट पड़े, "सुन ले सुगना-बहू, आज से इस दरवाजे पर कदम रखा तो टाँग तोड़कर रख दूँगा ! तुम्हारे कारण मेरी इज्जत सरेआम नीलाम हो गयी। सच बता, हमल किसका था ?"

"किसका था ?" चम्पा को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। अचानक लगा कि उसके धैर्य का बाँध टूट जायेगा। वह दहाड़ मारकर रो उठेगी। भगवान का वास्ता देकर शशि बाबू को एक-एक क्षणों की याद दिलायेगी। और उनके कदमों में बच्चे को लिटाकर कहेगी—यह हमल तुम्हारा था, शशि बाबू, तुम्हारा !

मगर इस प्रार्थना से क्या होगा ?

और उसका मन हुआ, कि यदि यह बच्चा इस वक्त लोहे के घन की शक्ल अख्तियार कर पाता तो चम्पा इसे शशि बाबू के मुँह पर फेंककर बदले का एक तरीका ईजाद कर देती।

पर यह भी नहीं हुआ।

हारी हुई चम्पा, पथराये-जिस्म-ईश्वर की दुहाई देकर घर लौट आयी। उस नये माँस-पिण्ड को गलत सुबूत की तरह कोने में लुढ़काकर, दिन भर वह गुमशुदा बच्चे की तरह रोती रही।

उसके बाद, पेट की आग सारे गाँव की मजूरी पर आश्रित हो गयी।

सुगना पहले तो सड़क के चीथड़ों में लिपटा असन्तुलित घूमता रहा। बाद में उसे कई रूपों में सुना गया—खोमचा लगाते हुए। कभी बीड़ियाँ बनाने वालों के साथ। कबाड़ियों के आगे-पीछे। और सिनेमा-घर की खिड़की पर 'टिकट ब्लैकर' की हैसियत से।

□ □

शाम आयी। अलाव के इर्द-गिर्द बिरादरी जमा होने लगी। शुरुआत लालकिला और जामा मस्जिद जैसे विषयों से हुई। बहुत जल्दी-वे

'क्लाइमेक्स' पर आ गये।—"अच्छा सुगना, हुआ-सो-हुआ। अब भात-भोज देकर छुट्टी कर।"

सुगना ने सोचा कि वह छप्पर से बाँस खींचकर लोगों के सिर पर दे-मारे। और भागकर फिर महानगर के फुटपाथों के नाम समर्पित हो जाय। लेकिन अपनों से हारने की मजबूरी में, वह ऐसे सिलसिले को विस्तार नहीं देना चाहता था। उसने प्रतिवाद किया, "कैसा भात? शशि बाबू ने कौन-सा भात दिया?"

"शशि बाबू मर्द हैं।"

"तो मर्द का क़ुसूर, क़ुसूर नहीं होता?"

बिरादरी के लोग उसे कटघरे में पा गये थे। निर्णय के स्वर में बोले, "देख सुगना, डिल्ली-कलकत्ता घूमने से कुछ नहीं होता रे! यह तो वर्षों का कायदा-कानून है। करना पड़ेगा।"…

उस रात वह लगातार करवटें बदलता रहा, यह सोचकर नहीं कि इस भात के लिए माँगे गये कर्ज से वह अगले दस सालों तक लदा रहेगा। बल्कि इसलिए, कि इस घटना के मूल मे होने के बावजूद-शशि बाबू को भात देने की कोई बन्दिश नहीं है। क्यों?…

□

और यह किसन था। किसन भी लगभग एक सुगना ही था।

किसन को उस परिवार के साथ रहते हुए कई वर्ष बीत गये। एक तरह से देखें तो उसने अपनी जिन्दगी ही गुजार दी वहाँ। पर जैसा कि दूसरे नौकरों के साथ आम होता है—वे वक्त के साथ साहब से जितना सहज होते जाते हैं, किसन उतना ही गूँगा होता गया। अन्धा और बहरा भी। साहब की सेवा में वह जब भी उपस्थित होता, पता नही सोच के कितने-कितने पहाड़ उसकी छाती से गुजरते ! वह उनकी विशालता को सूनी आँखों से घूरता रहता। ऐसे मे साहब कुछ पूछ रहे होते, कुछ सुना रहे होते, दिखा रहे होते। और वह साहब के कथन से बेखबर उन पहाड़ों में अपना अस्तित्व तलाश रहा होता।

साहब झुंझला जाते, "किसन, आजकल तुम्हें क्या हो गया है ?"

मगर साहब थे दरियादिल आदमी। उनके अनुसार किसन मरे तो उनकी चौखट पर। जिये तो उनकी चौखट पर। और नाक घिसे तो उनकी चौखट पर। और अब तो नाक घिसते हुए कई वर्ष हो गये थे।

जिन्दगी के गुजरे हुए क्षणों को वह शून्य मे निहारता रहा। शाम

फूलों की शाख पर बैठकर पाँव बजाने लगी तो उसे अन्ना की याद आयी। बहुत कोशिश से उसने जुबान खोली, *"बीबी जी, आज मैं जल्दी क्वार्टर लौटना चाहता हूँ। अन्ना को मन्दिर ले जाना है।"*

बीबी जी सहसा एक साँप में तब्दील हो गयीं, "तो यह कहो कि अपनी लैला को पाजेब गढ़ाने जाओगे!"

किसन सहमकर चुप हो गया। वह समझ गया कि बीबी जी की *इच्छा के विरुद्ध कदम उठाने का क्या परिणाम होगा!*

□ □

बहुत छोटा था किसन, जब पहली बार इस परिवार में आया था। *तब उसकी दुनिया ही क्या थी? सुबह-दोपहर गाँव की झाड़ियों में* घूमता। चिड़ियों पर पत्थर फेंकता। तालियाँ बजाता। और जब दिन ढले, मरे हुए कबूतर या गिनती की कुछ मछलियों के साथ घर लौटता तो बाऊ आगबबूला हो जाता, "किसन, तू इतना बड़ा हो गया। तुझे कोई काम नहीं बचा है रे! ये रात-दिन का घूमना—तुम्हारे लक्षण अच्छे नहीं हैं!"

किसन लाठी से अपना क़द नापता। कहाँ बड़ा हो गया है वह?

और एक दिन उसके लक्षण सुधारने के लिए शशि बाबू ने कहा, "बुद्धू, इसे मेरे भाई को सौंप आ। साहब है वह। इसे घाट से लगा देगा।"

बाऊ खुश हो गया। वह किसन को लेकर साहब के सामने उपस्थित हुआ, *"साहब, इस गधे को आदमी बना दो!"*

साहब ठहरे दरियादिल। सो यह पुण्य काम उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। लौटते समय बाऊ ने कहा था, *"किसन, साहब का दिल जीतने* की कोशिश करना। आज से ये तुम्हारे अन्नदाता हैं।"

तब से एक लम्बा अन्तराल। एक पूरा युग बीत गया। किसन अपने अन्नदाता का दिल जीत रहा था।

शुरू के दिन कितने खुशफ़हमी में बीते! रोशनी के पृष्ठ पर उजली-

उजली इमारतें। शहर उसे एक संकीर्तन की तरह पवित्र लगा। उसकी तुलना मे गाँव का भुतैला वातावरण, बारिश मे सू-सू रोते हुए मकान, कँटीले चारागाहो मे पशुओं के पीछे भागना—कितनी उबाऊ थी उसकी दुनिया! वह भूलना चाहता था। भूलता गया। और बहुत बाद, एक दिन गाँव उसकी यादों के क्षितिज से मिट गया।

इस विस्मृति में साहब का बहुत बड़ा हाथ था। साहब ठहरे अँग्रेजियत के पुजारी। घर में कदम रखने के चन्द दिनो बाद ही उन्होने समझा दिया, "देख किसन, तू यहाँ नौकर जरूर है। लेकिन स्वयं को इतना मेन्टेन कर कि सामना पडे तो कोई साहब भी शरमा उठे।"

साहब ने बताया कि जमाने की रफ्तार बहुत बदल गयी। अब तो अफसर भी कैसे-कैसे लोग हो जाते हैं! फिर नौकरो की तो बात ही क्या? मगर एक जमाना था अँग्रेजी साहबों का। उनके नौकर भी इतने रोबीले और स्मार्ट होते थे, इतनी फर्राटेदार इंग्लिश बोलते थे कि सुनकर हिन्दुस्तानियो के छक्के छूट जाते थे।

"तुम्हें उन जैसा ही बना है।"

"लेकिन मैं तो बहुत कम पढा-लिखा हूँ।" किसन हकला गया।

साहब ने ढाढस बँधाया, "घबराओ नही। सब सीख जाओगे।"

साहब ने उसके लिए विदेशी अफसरों के नौकरों-जैसे कपडे सिलवाये। सैल्यूट मारना सिखाया। और पहली की किताब लाकर हाथ में थमा दी। किसन खिल गया। साहब उसका कितना खयाल रखते हैं!

किसन ने साहब की उम्मीदों पर जीना शुरू किया। सुबह भोर में उठकर झाड़ू-पोंछा लगाता। बर्तन धोता। ब्रेकफास्ट और लंच तैयार करता। बच्चों को स्कूल छोड़ता। और खाली समय में वर्दी चढ़ाकर चौखट पर खड़ा हो जाता। आने वालों को तहजीब से 'अटेण्ड' करने की कोशिश करता।

रात, बिस्तर पर जब सारा घर नीद की बाँहो में होता, किसन किताब से रट रहा होता—ए फार एपिल। बी फार बैग।...

उसने साहब की कृपा से शहर देखा। शहर की चमक देखी। दुनिया देखी। और उस दुनिया का भूगोल अपने मस्तिष्क की उँगलियों से पकड़ता रहा। पकड़ता रहा।

□ □

और किसन अच्छा-खासा नौकर बन गया। नौकर ही नहीं, देशी लोगों के लिए साहब।

साहबी के उन्हीं दिनों जब लड़की वाले किसन के गाँव तक चढ़कर मकान पर हुक्का पीने लगे तो बाऊ को चिन्ता हो आयी कि अब लड़के की शादी कर देनी चाहिए।

बाऊ ने लाठी उठायी। और घर से निकल पड़ा।

सुबह-सुबह वह साहब के बँगले पर पहुँच गया। साहब उस वक्त लान में ब्रेकफास्ट पर थे। धूप की पीली उँगलियाँ गुलमुहर से खेल रही थी। और साहब सुबह का आनन्द लेते हुए खुश हो रहे थे। मगर वह अधिक देर तक खुश नहीं रह सके। उन्हे जैसे ही बूढ़े के आने का कारण पता चला, वे चिन्तित हो उठे—किसन शादी करेगा। बच्चे पैदा करेगा। और अपनी दुनिया में खो जायेगा। फिर इस घर का काम कौन करेगा?

साहब राख हो उठे। मगर सम्हलकर बोले, "बुद्दू, तू बिल्कुल बुद्दू ही रहा। हमारे रहते भला किसन को शादी की क्या जरूरत? रोटी-पानी तो चल ही रही है, उसको।"

बूढ़े ने हाथ जोड़ लिया, "गिरस्ती तो बसानी ही होगी मालिक!"

"लेकिन यह गृहस्थी क्या किसन की नहीं है?"

"नही मालिक! मैंने यह कब कहा? मगर इस बूढ़े की भी तो सोचिये। दो रोटी का ठिकाना हो जायेगा।"

साहब ने बहुत आत्मीयता दिखायी। पर बाऊ अपने तर्क देता रहा। उसने बहुत मुश्किल से साहब को इस शर्त पर राजी कर लिया कि शादी के बाद दुल्हन गाँव में रहेगी। और किसन पहले की तरह साहब का नमक अदा करता रहेगा।

उसे कुल तीन दिन की छुट्टियाँ मिलीं। कोई ढोल बजा न शहनाई। किसन की शादी हो गयी।...अन्ना के साथ पहली रात गुजारते हुए लगा कि वह वर्षों अन्धों के शिविर में भटकता रहा। उसे अन्ना की कितनी जरूरत है ! अन्ना को उसकी जिन्दगी में आना ही चाहिए।

दूसरी सुबह उसका बहुत मन हुआ कि साहब को एक खत लिख-कर छुट्टियाँ बढ़वा ले। पर बाऊ का सामना होने पर वह लाज से गड गया। ऊपर से उसका आदेश कि आज चौथा दिन है। उसे साहब को नाराज नही करना चाहिए। साहब देवता है। खुश रहने पर बहुत कुछ कर सकते है।

किसन फिर शहर आ गया। और पहले की तरह साहब की सेवा में व्यस्त हो गया।

रात दबे पाँव आती। और एक भूकम्प की तरह उसे झकझोर जाती। बरामदे मे बिस्तर पर लेटा हुआ वह साहब के कमरे से आती हुई बेड की चरमराहट सुनता। कोशिशो के बावजूद उसकी आँखो से नींद उड जाती। अगले दिन वह साहब से छुट्टियाँ चाहता।

मगर साहब ठहरे दरियादिल।

उनके अनुसार किसन बरबाद होने पर तुला था। और साहब उसे बरबाद होते नही देखना चाहते थे। छुट्टियाँ कैसे मिलती ? अन्ना के लम्बे-लम्बे खत आते। किसन खतों से उसे आशान्वित करता। और एक बार फिर साहब से निवेदन करता। मगर उसकी कोशिशें नाकाम होती रही। होती रही।

कई माह बीत गये। अन्ना मायके चली गयी। उसने किसन के खतों का जवाब देना बन्द कर दिया। कुछ दिनो बाद जब बाऊ विदाई के लिए गया तो अन्ना के पिता ने साफ कह दिया कि वह अपनी लड़की को गाँव में परिन्दे उड़ाने के लिए नही भेजेगा। किसन चाहे तो उसे अपने साथ शहर ले जा सकता है।

किसन ने सुना तो उसे काठ मार गया। रोयी आँखो से उसने साहब

को इस बात की सूचना दी। मगर यहाँ भी साहब की दरियादिली काम आयी। हँसकर बोले, "उस औरत का दिमाग खराब हो गया है। घबराओ नहीं, तुम्हारी दूसरी शादी हो सकती है।"

किसन ने चुपचाप साहब का आदेश सुन लिया। पहली बार उसकी आँखों में साहब के प्रति खून उतर आया। आखिर साहब चाहते क्या हैं?

सुबह रोज की तरह आती। मौसम पहले की तरह बदलता। फूलों के रंग उसे अन्ना की याद दिलाते। एक अन्तहीन शंखनाद उसके कानों में गूँजता रहता। बिस्तर पर जब भी आँख लगती, सपनों मे वह पगडंडियों पर दौड़ रहा होता।

उसने शहर में कमरा तलाश करना शुरू किया।

और एक दिन साहब को सूचित किये बगैर, जागी आँखों से वह उन पगडंडियों पर दौड़ने लगा, जो उसे अन्ना के घर की ओर ले जाती थी।···

अन्ना शहर आ गयी।

किसन जब साहब के सामने उपस्थित हुआ तो साहब की आँखों में एक कसाई का भाव था। उन्होंने कहा, "किसन, अब तुम्हारे पंख उग आये हैं। तुम उड़ने लगे हो। जाओ इस बार माफ कर दिया। आइन्दा फड़फड़ाने की कोशिश भी मत करना। मुझे पंख काटना आता है।"

किसन को साहब ने बर्दाश्त कर लिया। मगर वह घर अब उसके लिए पहले जैसा नही था।

सुबह अँधेरे मुँह, वह अन्ना को बिस्तर पर छोड़कर साहब के घर आ जाता। रात, दस बजे तक हड्डियाँ तोड़ता। ऊपर से माहौल का तनाव उसे पूरी तरह आत्महीन कर देता। साहब, बीबी जी और बच्चों के शब्द चाबुक की तरह उसकी पीठ पर तने होते। वह सर्कस के पशु जैसी भूमिका मे लगा रहता। जरा-सी गलती से उसकी पीठ पर 'सड़ाक्' की आवाज बज उठती।

रात को शहर की वीरानियों से होकर जब किसन घर पहुँचता,

अन्ना की सारी इच्छायें ध्वस्त हो चुकी होतीं। अन्ना को अपने ग्रामीण भाई और पिता की आशीष-मुद्रा याद आती। अकेलेपन के जंगल मे भटककर वह चूर-चूर हो जाती। कैसा शहर ? कैसा सिनेमा ? सैर-सपाटा, इन्जॉयमेन्ट ? सिर्फ एक कमरे की दीवारें अन्ना का शहर थी। किसन को छुट्टियाँ कहाँ मिलती थी कि वह-अन्ना को शहर दिखाये ? भीड़-भरी सड़को पर साथ-साथ निकले। पार्कों में टहले। रेस्तरां में जाये। अपनी उपस्थिति से पत्नी के सपने सहलाये। नये सपने पैदा करे !

"सुनो, तुम कब तक ऐसे करोगे ?" अन्ना सवाल करती।

और किसन की उदास आँखों के कथन पढकर अपना सवाल विषयान्तर कर देती। घंटी की तरह हँसती। उदासी की पर्त खण्ड-खण्ड तोड़ देती।

जिन्दगी के उन्ही दिनों अन्ना पेट से हो गयी तो उसने किसन से कहा कि शाम को वह जल्दी लौट आये। अन्ना मन्दिर जायेगी। मगर उस शाम बीवी जी की दरियादिली काम आयी। रात, ग्यारह बजे किसन घर लौटा तो अन्ना हाथो में सिर दिये बैठी थी। दरवाजे पर मिठाइयो का पैकेट कुत्ते घसीटकर खा रहे थे।

रात भर वह अन्ना का सिर अपनी गोद में रखकर, स्वयं भी सिसकता रहा।

□ □

सुबह वह घर से निकला तो निर्णय कर चुका था। बँगले पर पहुँचकर उसने हाथ जोड़ लिया, "साहब, इतने दिनों तक आपकी सेवा की। बहुत कुछ देखा-सुना। आपकी बहुत कृपा थी। मालिक, एहसान तो जिन्दगी भर नहीं भूलूंगा। पर अब छुट्टी चाहता हूँ। गाँव जाकर कुछ रोटी-पानी का इन्तजाम कर लूंगा।"

साहब ने सुना तो हँस दिया, "क्योंकि अब बीवी-बच्चे वाले हो गये हो ? मगर एक बार ठंडे दिमाग से सोच लो।"

"अब और नही सोचना है, मालिक ! आपका हुक्म चाहिए ।"

अन्ना···अन्ना···और अन्ना ! किसन के लिए अब सिर्फ अन्ना है। यह अन्ना ही उनके रास्ते का कांटा है ।

साहब ने फिर कोई सवाल नही किया, सिवा इसके कि वह एक सप्ताह और रुक जाय । तब तक वे किसी नौकर का बन्दोबस्त कर लेंगे ।

घर लौटा तो वह बहुत खुश था कि गाँव पहुँचकर बँटाई पर खेत लेगा । जी-तोड़ मेहनत करेगा। एक बार वह फिर उन वादियों में पहुँच जायेगा, जहाँ इंच-इंच पर उसके बचपन के हस्ताक्षर हैं । जहाँ न कोई साहब होंगे, न भीड-भाग-दौड़ । गाँव की वत्सला धरती उसे अपने आँचल में समेट लेने को आतुर होगी । एक जमाने में साथ आँख-मिचौनी खेल-कर बडे हुए लोग होगे । लोगों का स्नेह होगा । बाऊ होगा । अन्ना की बाँहें होंगी । बहुत कुछ होगा, जो उन्हें रस-ज्वार मे डुबोने के लिए विशाल और विराट हो ।

उसे सप्ताह की आखिरी सुबह का इन्तजार था ।

रोज एक चहक के साथ दिन शुरू होता । वह कदम-कदम साहब के पीछे चलता । उनके शब्दों पर दौड़ता । अपनी सीमित उपस्थिति से उम्र भर तक का नमक अदा करता । साहब में उन दिनों बहुत परिवर्तन था । वे किसन की उपस्थिति में लतीफे सुनाते । बात-बात पर दुहराते कि अब वह नौकर नही, उनका मेहमान है ।

उस शाम घर लौटा तो दरवाजा लावारिस खुला था । अन्ना कहाँ गयी होगी ? उसने पड़ोसियों से पूछा, गली के पनवाड़ी से पूछा, बैठक-बाजों से पूछा । वे विषयान्तर कर अपने लोगों की ओर मुड गये ।

रात भर संशय, इन्तजार, और इन्तजार ।

सुबह वह गाँव गया, अन्ना के घर गया । अन्ना कही नही नही थी ।... और अब वह साहब के बंगले पर था । उनके पाँवों पर सिर टेककर रो रहा था, "सरकार, मैं जिन्दगी भर आपकी गुलामी करूँगा । मेरी बीवी कहाँ है ? बता दो । साहब, मेरी बीवी लौटा दो ।"

"तो वह-बदचलन भाग गयी ?" साहब की आँखें फैल गयीं, "लेकिन तुम इतने परेशान क्यों हो, तुम्हारी दूसरी शादी हो सकती है।"

किसन चीख उठा, "हरामजादे, बदचलन होगी तेरी अम्मा। तू अपने बाप की शादी कर पहले !"

साहब बोखलाये, "यू बास्टर्ड !"

सहसा उसका हाथ साहब की गर्दन पर चला गया। किसन अब अपने 'साहब' से सवाल कर रहा था, "लफंगे, बोल मेरी अन्ना कहाँ है ? किधर है मेरी अन्ना !"

□

और यह भी मेरे युद्ध का मंगलाचरण था।

सुगना चौथे दिन आया। किसन और रवीन्द्र शुक्ल भी।

उस शाम, शहर के एक छोटे-से कमरे में हमने देहात के चन्द मजदूरों, विद्यार्थियों और बुद्धिजीवियों की गुप्त मीटिंग की। घन्टों इलाके में हुई शोषण की घटनायें याद करते रहे। तय किया कि हम कई हिस्सों में बंटकर लोगों के पास जायें। समझायें। उन्हें संगठित करें। और ऐसे षडयन्त्रों के खिलाफ सामूहिक आवाज उठायें। हमने एक-एक बात को बहुत गहराई से सोचा। और हर संभावित खतरे झेलने का हौसला लिये गाँवों में निकल पड़े।

अगले कई सप्ताह तक हम चक्कर काटते रहे।

और एक दिन गाँव-गली-बाजारों में दीवारों पर ढेरों इबारतों के पोस्टर चिपकाये गये। जिनमें 'हरिजनो, तुम किसी के गुलाम नहीं हो', 'शशि बाबुओं का सिंहासन तोड़ दो', 'निहत्थो, हमारे साथ आओ, हम तुम्हारे शस्त्र बनेंगे', 'चार जून को आम सभा' जैसे आह्वान की भरमार थी। लोगों में इस बात की बहुत तीखी प्रतिक्रिया हुई। पोस्टर हाथों-

हाथ देहात के एक-से-दूसरे कोने तक फैल गये। फुसफुसाहटों में निर्णय लिया जाने लगा।

हालांकि यह एक शुरुआत थी। मगर 'शशि बाबुओं' के चेहरे इस हल्की-सी आँच से झुलस गये। अपनी सीमाओं में वे किसी खतरनाक स्थिति की कल्पना से थरथरा उठे। शशि बाबू ने हँसकर उनकी चिन्ता दूर की। और उन्हें एक खूबसूरत मनोरंजन की ओर मोड दिया, कि ये शहरी नेताओं के चोंचले है। कुछ नहीं करेंगे। सिर्फ इन्हें संसद जाने के लिए मूर्खों का बहुमत चाहिए। और इसके लिए जरूरी है—झंडा, पोस्टर, आवाजें—नाटक।

पर क्योंकि एक सफल शासक को अपने छोटे-से-छोटे दुश्मन से भी होशियार रहना चाहिए, शशि बाबू ने सवर्णों को आगाह कर दिया कि वे हर तरह से तैयार रहे। देहात में ऐसी कोई भी जनसभा न होने दे। जरूरत पडे तो हिंसक ढंग से पेश आयें। भले ही लाशें गिरें, लेकिन गुलामों को सिर नही उठाने दिया जायेगा। उन्होंने हरिजन बस्तियों में जाकर धमकाया कि वे इस सभा मे भाग लेंगे तो आइन्दा उन्हे सवर्णों का कोई काम नही मिलेगा। वे भूखों मर जायेंगे और उनका घर से निकलना मुश्किल हो जायेगा।

बावजूद इन घुड़कियों के हम अपनी दिशा में बढते रहे। हरिजन मुट्ठियाँ कसते रहे। उन्हे चार जून का इन्तजार था।

□ □

दोपहर की तपती हुई लू। हवाओं की सायँ-सायँ। नीम-बेहोशी में डूबा हुआ गाँव। शशि बाबू ने काका का दरवाजा खटखटाया, "पांडेय जी, मैं तुम्हारा दुश्मन हूँ, पर यह मत भूलो कि मैंने हमेशा तुम्हें बड़ा भाई माना। तुम्हें भरत की दृष्टि से देखा है।"

"बात क्या है?"

शशि बाबू ने कहा, "बात तो बहुत बडी है। पर आप मेरी क्यों मानोगे! शरत अपना ही बच्चा है, गलत रास्ते पर जा रहा है।"

"क्या किया इसने ?"

"अभी तो कुछ नहीं किया। लेकिन शुरू किया है तो करेगा ही। चार जून को ये लोग हरिजन और पिछड़े वर्गों का सम्मेलन कर उन्हें ऊँचा दर्जा दिलाने के नाम पर मुसलमान बनायेंगे। दक्षिण भारत में सामूहिक धर्म-परिवर्तन की खबरें तो अखबारों में पढ़ी होंगी आपने ? सोचिये, एक दिन देश में मुसलमानों का राज होगा। हिन्दू ढूंढे से नहीं मिलेंगे। ब्राह्मण होकर क्या आपका यही फर्ज बनता है कि अपने धर्म के साथ दगा करें ?"

काका ठंडे हुए। उन्होंने कहना चाहा कि शशि बाबू, अब अधिक मत समझाओ। यह तुम्हारा नया दांव है। पर इतना ही कह पाये, "यह आपका अन्दाज है। गलत भी हो सकता है।"

"अन्दाज नहीं, यह सच है। खबर उस तहखाने से आयी है, जहाँ बैठकर इन्होंने योजना रची।"...

शशि बाबू लापरवाही से चल दिये। काका टाल गये। पर कोई एक संदेह उनके दिमाग में बहुत छोटी-सी जगह पा गया कि यह हो भी सकता है, अगर ये नेताओं के चक्कर में हैं तो।

उस दिन शहर से लौटने पर काका मुझे समझाते रहे। अपने खून की शपथ दिलाते रहे कि मैं जो भी करूँ, मगर धर्म को कलंकित न करूँ। ये लड़ाइयाँ चलती रहेंगी। दोस्ती, दुश्मनी में बदलती रहेगी। लेकिन धर्म ईश्वर का दूसरा नाम है। उसे पाँव-तले रौंदना ठीक नहीं।

बात शशि बाबू की जुबान से निकलकर इलाके में फैल गयी कि शरत और रवीन्द्र के नेतृत्व में चार जून को अनगिन हिन्दू अपना धर्म बदलने जा रहे हैं।

अगले दिन चन्दू माइक वाले के सहयोग से यह कदम भी शुरू हो गया। पंछी पहलवान रिक्शे पर बैठा गाँव-दर-गाँव मुनादी कर रहा था, "मित्रों, धरम से बढ़कर दुनिया में कुछ भी नहीं है। पर कौम के लुटेरों ने हिन्दू को मुशलमान और मुशलमान को हिन्दू बनाकर धरम का जो

मजाक उड़ा रहे हैं, उशके खिलाफ आइये हम चार जून को कौमी एकता दिवश मनायें और शबक लें कि एक हिन्दू को हिन्दू और मुशलमान को मुशलमान रहकर देश की शेवा करनी चाहिए। इस औशर पर एक मुशायरा ओर कव ग्राम्मेलन का भी आयोजन किया गया है, जिशकी शरारत, मेरा'मतलब शदारत यानी *अध्यक्षता परशिद्ध फिलम अभिनेत्री* शबाना आजमी के अब्बा जनाब कैफी आजमी करेंगे।''...

इस एलान से लोग चमत्कृत हुए। उन्होंने पूछा—क्या सचमुच शबाना के बाप आ रहे हैं?...उन्होने अपने-आप को आईने में निहारा। चेहरे पर नये रंग पोते। कपड़े धुलवाये। और उस शुभ दिन के इन्तजार में एक-एक पल गिनने लगे।

□ □

सम्मेलन की तारीख निकट आ गयी। हमने सारी तैयारियाँ कर ली। और एक बार फिर लोगों को अन्तिम रूप से आमन्त्रण देने के लिए चल पड़े। उन्होंने हमारी बातें पहले जैसी निष्ठा से सुनी। सम्मेलन में आने के लिए तत्परता दिखायी और कुछ के होंठों पर वही सवाल था कि क्या सचमुच हीरोइन का बाप आ रहा है? मगर यह होगा कैसे? फिल्म वाले इतने सस्ते नहीं होते कि गाँव-गाँव घूमें।

''मगर वह फिल्म वाला कहा है! सिर्फ बाप होने से भाव तो नहीं *बढ़ जायेगा। अरे, मँहगी तो शबाना है।''*

''और फिर कैफी साहब अपने ही जिले के तो हैं। अपने गाँव-देहात में कौन नही आना चाहेगा! भला यह दिखाने कि लोगो देखो, हम पुराने तुलसिया नही, अब गोस्वामी तुलसीदास हैं।''

और कुछ मसखरो ने तो यहाँ तक कहा, ''शरत बाबू, क्यों मरने पर तुले हो? बडे भाग्य से तो यह दिन देखने को मिलेगा कि कोई सनीमा वाला इस बीहड़ में तशरीफ लाये। अबकी तो उसी के दर्शन हो *जाने दो। हमारी गुलामी खत्म करने के लिए सम्मेलन कभी बाद में कर* लेना।''

इन भटकावों के होते हुए भी लोगों का एक बड़ा समूह हमारे साथ था। उन्होंने मंच बनाया, शामियाना लगाया, दरी बिछायी। और थकी-देह में पुष्प-गन्धों की ताजगी लिये घर लौटे।

उन्होंने मसखरी को बच्चों का चाकलेट बताया।

उन्होंने कौमी एकता के नाम पर लतीफे सुनाये।

उन्होंने आजादी के शहीदों के गीत गाये।

□ □

चार जून की सुबह।

हम अपने गतव्य की ओर चल पड़े।

मन्दिर में घंटे भी नहीं बज पाये, किसान खेतों तक नहीं आये। लोग बिस्तरों पर आँखें खोल रहे थे कि अचानक 'मारो-मारो, भागो' की आवाजों से गाँव गूंज उठा। लोग दौड़कर घरों में छिप गये। पता चला, हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया है। लाशें गिर रही हैं। तैमूरलंग का शासन जिन्दा हो उठा है।

माँ घर के एक कोने में विलाप करने लगी—शरत पता नहीं कहाँ किस हाल में होगा! काका माँ पर चिल्लाने लगे, "होगा कहाँ! किसी का पत्थर खाकर सड़क पर पड़ा होगा। मैंने सोचा, शशि प्रतपवा दुश्मन है मेरा। झूठ बोलता होगा। पर उसने मुझे पहले ही बता दिया था कि इस लड़के की संगत ठीक नहीं। यह दंगे करवायेगा। वही हुआ।"...

कदम-कदम पर घर। घरों में बेचैनी। किसी का बच्चा बाहर छूट गया। कोई खलिहान में था। और कोई पिछली शाम शहर गया था, वापस नहीं लौटा। लेकिन घरों के दरवाजे—बन्द और चुप। बाहर पत्थरों की बारिश। पुलिस के बूटों की आवाजें। रह-रहकर एक चेतावनी—सावधान, कर्फ्यू है। किसी ने घर-बाहर कदम रखा तो उसे गोली मार दी जायेगी।...

आग एक गाँव से दूसरे, और दूसरे से तीसरे होती हुई इलाके में फैल गयी।

कोई चार मील बाद पुलिस ने हमें रोक दिया। उन्होंने कहा, आगे खतरा है। वापस लौटना होगा। हम ठगे-से लौट आये और 'शशि बाबुओं' के इस अस्त्र पर घंटों हँसते रहे।

रात भर वही रोदन। पत्थर। और चेतावनी।

कर्फ्यू अगली शाम खत्म हुआ। लोग घरों से निकल पड़े। उन्हें अपने सम्बन्धियों के कुशल-क्षेम की उत्सुकता थी।

बाहर संवादों की आँधी थी। किस गाँव में कितने लोग मरे! कितनों के सिर फूटे! और कौन हाथ-पाँव गँवाकर हमेशा के लिए इतिहास बन बैठा!

शशि बाबू का दल अलग-अलग खेमों में लोगों को समझा रहा था। उन्होंने सवर्णों में कहा—शरत ने कौमी एकता दिवस को भंग करने के लिए यह दंगा करवाया।

उन्होंने हरिजनों में कहा—शरत ने तुम्हें मुसलमान न बना पाने की खीझ में यह दंगा करवाया।

उन्होंने कस्बों में कहा—शरत ने देहात से हिन्दुओं का नाम मिटा देना चाहा। ऐसे लड़कों को तो इलाके की सीमा से खदेड़ देना चाहिए। उन्हें कुत्ते की तरह चौराहे पर गोली मार देनी चाहिए।···

इस सत्य से सबकी आँखें चकाचौंध हो ही रही थी कि सूचना मिली, पंछी पहलवान के घर कुहराम मचा है। लोगों ने कहा—पंछी पिछली सुबह माइक पर एलान करने निकला था, लौटकर नहीं आया। किसी ने कहा—उसने पंछी को रिक्शे पर जाते हुए देखा था। किसी ने उसे यहाँ देखा, किसी ने वहाँ। और दबी जुबान में यह भी चल निकला कि पंछी कस्बे की नदी में मारकर फेंक दिया गया, लोगों ने पुल पर एक 'कटुवे' को उसके पेट में छुरा घोंपते देखा था।

घर पर भीड़ लग गयी। पहलवान की पत्नी रो-रोकर बुरे-हाल हो गयी। बच्चे छौनों की तरह चिचिया रहे थे। लोग अलग-अलग दिशाओं में उसकी लाश ढूंढने निकले। महिलायें माथे पर हाथ

कहने लगीं—हे राम। मदन बाबा ने भी खूब रावण पैदा किया। बच्चों के हाल तो देखो। राधा की भरी जवानी। बेचारी किसके खूंटे बँधेगी ?

विसेसर खबर पाते ही दौड़े। उन्होंने कहा, वे शरत को कच्चा चबा जायेंगे। पर मामला जो सामने है पहले उससे निबटो। विसेसर के आदमी जाल ले आये। वे नदी की ओर चल पड़े। साथ-साथ गाँव-देहात भी।

लगभग तीन-चार घंटों की मेहनत के बाद वे एक नर-कंकाल को पाने में सफल हो गये। लोगो ने कहा—पंछी ही है। मांस जानवर खा गये तो क्या ! छाती की हड्डियाँ तो देखो। इतना चौड़ा सीना किसका हो सकता है !

कंकाल घर लाया गया। पहलवान की पत्नी की चूड़ियाँ तोड़ दी गयीं। सिंदूर धो दिया गया। लोगों में रोष था। पास ही कुछेक हरिजन सिर झुकाए खड़े थे। कुछेक बाँस के टुकड़ों से अरथी बनाने लगे।

□ □

मगर इस नाटक की शुरुआत कई दिन पहले हो गयी थी।

कातिल साहब ने कहा था, "शशि बाबू, आप भी चार जून को कौमी एकता दिवस मना लो। आपका काम कुछ ज्यादा ही पवित्र लगेगा। लोग उधर को दौड़ेंगे।"

"मगर उसके बाद क्या करोगे ? कितने एकता दिवस मनाओगे ?"

"क्यों नहीं मनायेंगे ? उसके बाद यूसुफ आजाद की कव्वाली रख लेंगे। या किसी जादूगर को बुलवा लेंगे। फिर हो सकता है सूखा-बाढ़ ही आ जाये। राजनारायण जी दाढ़ी बढ़ायें-मुड़ायें। किसी कुत्ते की पूँछ गंगाजल से धुलवायें। विदेशी कोई दूसरा स्काईलैब गिरायें। करिश्मों की कमी है क्या ! जनता को तो बस कुछ चटपटा चाहिए। फिर आप करते रहो आह्वान। कोई उधर फटकेगा भी नहीं।"

"पर भाईजान, ये लड़के अकेले नहीं हैं। इनके पीछे कोई राजनीतिक ताकत लगी है। अच्छा होगा कि इन पर कोई इल्जाम मढ़

दिया जाये, जिससे भविष्य मे लोग इन पर विश्वास ही न करें।"

"तो मढ दो न इल्जाम। शशि बाबू आप भी सूर्य को दिया दिखाने की बात करते हो। अरे इल्जाम ढूंढने कहीं लंदन तो जाना नहीं है। अपने हाजी साहब से कहो, वह तुम्हारी काली मैया के चौरे पर गाय कटवा दें। और तुम उनकी मस्जिद मे सूअर दौड़ा दो।"

"और मामले को सहानुभूतिपूर्ण बनाने के लिए एक-दो लोगों को गायब भी करवाना पड़ेगा।"

"तो कर दो न गायब। पंछी पहलवान से कह दो, महीने-दो महीने के लिए चुपचाप कहीं खिसक जाय। लेकिन खबरदार, यह बात उसके घर वालों को भी नहीं मालूम होनी चाहिये।"

शशि बाबू ने पंछी पहलवान से बात की तो उसने कहा, "भैया, महीने की क्या बात, कहो तो साल भर के लिए निकल जाऊं। या यहीं बैठे हाथ-पैर तुड़वा लूं!"

☐ ☐

यह फन्दा बहुत कारगर साबित हुआ। अफवाहें- किस्से...किस्से-अफवाहें...अनगिन प्रतिक्रियायें। इन सबमें डूबा हुआ गाँव। और गाँव में काका...अंदाज लगाते, स्वयं को बचाते, भय से थरथराते। शशि बाबू पहले की तरह उनके दरवाजे पर थे। उन्होंने पूछा, "पंडित जी, अब बोलो क्या कहते हो?"

"मैं क्या कहूँ!" काका दयनीय हो उठे, "इस लड़के से हार गया मैं।"

"फिलहाल हुआ-सो-हुआ। अब से भी तैयार हो जाओ।"

"क्या करना होगा?"

"हिन्दुत्व की रक्षा।"

काका हिन्दुत्व के नाम पर मन्दिर मे मानस-पाठ करने लगे। भीड़ हाथ जोड़कर प्रवचन सुनने लगी—जब-जब होय धरम की हानी...। तो सज्जनो, इस धरती पर तुर्क रूपी असुरों का प्रभुत्व बढ़ गया है।

भक्तों की भव-पीर [illegible] के लिए अब तो फिर प्रभु को शरीर धारण करना पड़ेगा। बोलो श्री राम चन्द्र की...!

और उधर ज़बान से [illegible] पर [illegible] होने लगी। हाजी साहब मुल्लाओं के बीच [illegible] टोपी से खड़े हो गए—हजरात, काबा की कसम खाकर कहो कि इस्लाम का डूबने नही दोगे। भले ही इस जमीं पर एक और पाकिस्तान बन जाए।...

□ □

...स्थिति कई दिनों बाद सामान्य हुई।

शशि बाबू ने 'कौमी एकता दिवस' की नयी तारीख विज्ञापित की। लोगों को इस बात से बहुत दुख हुआ कि दंगे ने सत्यानाश कर दिया। 'फिल्म वालों के पिताश्री' को देखने का सौभाग्य नहीं मिल पाया। उनके सामने अब एक दूसरा जुझारू सवाल था कि इस नयी तारीख पर क्या कैफी साहब आ सकेंगे? शशि बाबू ने कहा, कि वे अपनी ओर से पूरी कोशिश करेंगे। सफलता ईश्वर के हाथ है।

□ □

अब क्या हो? कैसे हो?

हम अपने अगले कदम की सोच में एक बार फिर उन्हीं रास्तों पर थे। कस्बे पहुँचकर हमने देखा, लोगों की भौंहें तनी थीं। गाँव में प्रवेश करते ही हमारा पीछा शुरू हो गया। वे बाजों की शक्ल में हमारे इर्द-गिर्द थे। एक बुजुर्ग ने बताया कि हम फौरन वहाँ से निकल भागें। पहलवान का भाई लाठी लेकर हमें ढूँढ रहा है। फिलहाल कोई भी शख्स हम पर वार कर सकता है।...

हरिजन बस्ती में गये तो वहाँ उनके दरवाजे धड़ा-धड़ बन्द हो गये। जिनसे सामना हुआ—वे हमारे चेहरों पर डाकू, नक्सलवादी और पाकिस्तानी होने के चिह्न ढूँढते रहे। हमने उन्हें समझाने की कोशिश की। पर वे आदमी नहीं एक विशेष कोण पर खड़े संगतरास थे। हमने पुकार-पुकारकर कहा—पत्थरो, सदियों की इस कैद से तुम्हें घृणा होनी

चाहिए। तुम्हें उस कलाकार का सिर तोड़ देना चाहिए, जिसने तुम्हें एक ही दिशा में खड़ाकर धरती के उम्र जैसी लम्बी समाधि दी है। तुम्हे बगावत करनी चाहिए। तुम बगावत करो। पत्थरो, हमारे शब्द सुनो!...

पर कुछ नही हुआ। एक तिलस्मी इमारत से टकराकर आवाजें हम तक लौट आती। अट्टहास करती। पंजे दिखाती। हम पर गुर्रातीं। हम वापस आ गए।...

सप्ताह भर बाद शशि बाबू का मुशायरा चल रहा था। वे जनता से मुखातिब थे, "हुनरपरस्तो, पिछले दंगे की वजह से एक बहुत बड़ा मौका हमारे हाथ से निकल गया। कैफ़ी आज़मी साहब आज भी हमारे मेहमान होते। लेकिन इस नयी तारीख पर वे किसी दूसरे मुशायरे के लिए ज़ुबान दे चुके थे। मगर बड़े फ़ख्र की बात है कि हमारी इस कमी को पूरा कर रहे हैं—जनाब कैफ इन्दौरी। कैफ साहब हमारे बीच मौजूद हैं। ये उन्ही अभिनेत्री—मोहतरमा शबाना आज़मी के मौसा होते हैं। आपसे गुज़ारिश है कि सदर का पद सम्हालें। और मुशायरे-कविसम्मेलन की कार्रवाई को अंजाम दें।"

तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कैफ साहब सदर के पद पर आसीन हुए। लोगों मे फुसफुसाहट चल पड़ी—वाह-वाह क्या कहने! शबाना की शक्ल बिल्कुल उसके मौसा जी पर गयी है।...

फिर वही शहर का एक छोटा-बन्द कमरा। हम कुल पाँच लोग 'संगतराश' पिघलाने पर विचार कर रहे थे।...उधर शशि बाबू हजारों की भीड़ को अपनी नज्म सुना रहे थे—

मेरे महबूब को
जो खुदा ने बनाया होगा
तो ऐसा बनाया होगा, ऐसा बनाया होगा
कि किसी को नहीं बनाया होगा...

□□

शैलेश पंडित

जन्म : १५ जून, १९५५ को। अपेक्षाकृत युवा कवि-कथाकार। अप्रैल १९७५ में 'नया प्रतीक' से लेखन की शुरुआत। तब से देश की सभी प्रख्यात पत्रिकाओं में प्रकाशन। आकाशवाणी एवं टी० वी० से प्रसारण। अपने समय-सन्दर्भ को भायाई विशिष्टता के साथ पकड़ने की कोशिश में निरन्तर प्रयत्नशील। दीर्घसूत्री रचनार्धमिता के बावजूद श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह, श्री प्रेमशंकर, डॉ० परमलाल गुप्त, डॉ० विश्वनाथ प्रसाद जैसे प्रबुद्ध आलोचकों ने रचनाओं पर टिप्पणियाँ की हैं।

भयावह संघर्ष के क्षणों में श्री यज्ञेश ठाकोर और श्री जी० एच० मकाती का विशेष सहयोग। पिछले कई वर्षों से गुजरात में प्राध्यापन। आजकल श्री पटेल महिला आर्ट्स-कॉमर्स डिग्री कॉलेज जूनागढ़ में हिन्दी विभागाध्यक्ष।

शीघ्र प्रकाश्य : बन्धु-बिरादर, गोली मिट्टी का सिद्धार्थ (उपन्यास), कबीर का आधुनिक संदर्भ, कविता की प्रयोग-मुद्रा (आलोचना)। ● ●